दो शब्द

आज देशों की सीमायें बड़ी तेज़ी से बदल रही हैं। एटलस बड़ी जल्दी-जल्दी पुराने पड़ते जा रहे हैं। कुछ ही दिन पहले के स्वतंत्र राष्ट्र आज संसार के नक्शे में नहीं हैं। महान शक्तियों की सर्वग्रासी बाढ़ में पड़कर छोटे-छोटे राष्ट्र चन्द हफ्तों, चन्द दिनों, जब तब चन्द घण्टों में ही डूबकर अपनी स्वतंत्रता खोते जा रहे हैं। ऐसी उथल-पुथल के बीच संसार के गतिमान स्वरूप के अध्ययन की यह पुस्तक एक चेष्टा मात्र है।

प्रथमावृति के बाद से अन्तर्राष्ट्रीय समर-मंच कुछ और विस्तृत हो गया। पश्चिमी मोर्चे पर लड़ाई प्रगति नहीं कर पा रही थी। उधर उत्तर में घेरा सफल नहीं हो रहा था। इसलिए अँग्रेजों ने नारवे के तट पर जाकर जर्मन जहाज़ों पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया और उनके रास्ते में माइन बिछा दिये। इसके जवाब में जर्मनी ने नारवे पर हमला बोल दिया और उसके प्रधान-प्रधान नगरों, रेलवे लाइनों और कारखानों पर कब्ज़ा कर लिया।

लड़ाई का मोर्चा सहसा डेनमार्क के निकट आ गया था। अँग्रेज़ लोग डेनमार्क पर कब्ज़ा करके उससे जरमनी के ख़िलाफ़ फ़ौजी अड्डे का काम न लें, इसलिए जर्मनी ने नारवे पहुँचने से

पहले ही चन्द घण्टों में डेनमार्क पर कब्ज़ा कर लिया।

अब शायद स्वेडेन की बारी है।

स्कैंडिनेविया के मोर्चे पर हारने या हटने से जर्मनी को बड़ी भारी क्षति पहुँचेगी और स्वेडेन का लोहा हाथ से चला जायगा। इसलिए जर्मनी इस मोर्चे पर अपनी पूरी शक्ति लगा देना चाहेगा। उधर ब्रिटेन-फ्रांस के लिये भी यह मोर्चा उतना दुर्भेद्य न होगा जितना सीगफ्रीड लाइन का या उत्तर सागर तट का। इसलिये इस क्षेत्र में खूब घमासान युद्ध होने की सम्भावना है।

युद्ध की भावी प्रगति पर रूस और इटली के रुख का ख़ास असर रहेगा। ये दोनों बलवती शक्तियाँ, स्कैंडिनेविया में, बाल्टिक में, बालकान प्रायद्वीप में, भूमध्य सागर में, या पश्चिमी एशिया में कब क्या समस्या खड़ी करके परिस्थिति को उलट-पुलट दें यह अभी कोई नहीं कह सकता।

अख़बार रोज़ नये-नये भौचक्का कर देनेवाले समाचार लाता है। अगर ऐसी स्थिति में इस पुस्तिका से थोड़े से भी नागरिकों को अपना दैनिक अख़बार और संसार का घटना-क्रम समझने में सहायता मिली तो हम लोग अपना प्रयास सफल समझेंगे।

विषय-सूची

महासमर से महासमर तक

'युद्ध का अन्त करने के लिये ही यह युद्ध है'—कई बड़ी-बड़ी लड़ाइयों के समय यह सिद्धान्त राजनीतिज्ञों द्वारा दुहराया तिहराया जा चुका है। गत महासमर के समय भी यही कहा गया था। उस समय इस सिद्धान्त में दूसरों का विश्वास जमाने की चेष्टा करने वालों की भी कमी नहीं थी।

महासमर के बाद के इतिहास ने इस सिद्धान्त का खोखलापन शुरू में ही साबित कर दिया। इस काल के इतिहास की प्रगति के प्रकाश में देखने पर यही पता चलता है कि महासमर युद्ध का अन्त करने के लिये नहीं बल्कि उससे भी भयानक युद्ध की सामग्री जुटाने का कारण तैयार करने के लिये लड़ा गया था। सितम्बर १९३९ के बाद की घटनायें इस बात की यथार्थता अक्षर-अक्षर साबित कर दिखाती जा रही हैं। मानव कण्ठ की अपेक्षा तोपों की गगनभेदी आवाज़ आज सारे संसार के सामने चिल्ला-चिल्लाकर यही घोषित करती दिखायी देती है।

पर अब भी युद्ध की यथार्थता में विश्वास न कर उसके ग़लत सिद्धान्ती स्वरूप में विश्वास करने वाले लोग मौजूद हैं। शायद युद्ध का वास्तविक बीभत्स और वर्तमान युद्ध का

अवश्यम्भावी परिणाम ही ऐसे लोगों को इतना भयभीत किये रहता है कि उसे आँखों के सामने देखकर भी वे उसपर विश्वास नहीं कर सकते।

पिछले साल तक राजनीति के बहुत से विशेषज्ञों की यह धारणा थी कि वर्तमान संसार की उथल-पुथल का कारण समाज-व्यवस्था से सम्बन्ध रखती हुई विभिन्न विचार-धारायें हैं। जब वर्तमान युद्ध बहुत निकट आता जा रहा था, उस समय भी वे यही खयाल बनाये हुए थे कि युद्ध समाज-व्यवस्था सम्बन्धी परस्पर विरोधी शक्तियों के बीच ही ठनेगा। युद्ध-सम्बन्धी पुस्तकों में भी इसी आधार पर भावी युद्ध की दलबन्दियों का अनुमान लगाया जाता था।

इन दिनों समाज-व्यवस्था से सम्बन्ध रखती हुई तीन विशिष्ट धारायें बहुत अधिक जोर पकड़ रही थीं। तीनों ही अन्तर्राष्ट्रीय महत्व रखती थीं। इनमें पहली साम्यवादी विचारधारा थी। उत्पत्ति के साधनों को व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति न रहने देकर समाज की सम्पत्ति बना देना तथा पूँजी-मूलक वर्ग-व्यवस्था को मिटा देना इसका आदर्श था। इस आदर्श का सबसे बड़ा हामी रूस रहता आया है।

दूसरी विचार धारा फाशिस्टों की थी। ये उत्पत्ति के साधनों पर एक वर्ग विशेष के एकाधिकार की रक्षा के लिये आगे आये थे। ये अपने को वर्ग संग्राम का विरोधी और

साम्यवादियों का कट्टर शत्रु घोषित कर रहे थे। पर साथ ही यह विचार रखते थे कि राज्य-व्यवस्था इस भाँति की होनी चाहिये कि धनी वर्ग खुद ही निर्धन वर्ग का भी ख़याल रखते जायँ। इनके विचारानुसार यह ख़याल उन्हें राज्य की सारी शक्ति को अपने में केन्द्रीभूत रखने वाला एक 'नेता' ही दिलाता रह सकता है। इसलिये ऐसे 'नेताओं' को फाशिस्टवाद में सबसे प्रमुख स्थान दिया गया। इस फाशिस्ट-वाद को कार्यरूप में सफलता-पूर्वक परिणत कर दिखाने वालों में इटली में मुसोलिनी और जरमनी में हिटलर सर्व-प्रधान रहे हैं।

तीसरी विचार-धारा वैसे लोगों की थी जो समाज के वर्तमान स्वरूप को ज्यों का त्यों बना रहने देने में ही संसार का कल्याण देखते थे। ये फाशिस्ट ढंग के परिवर्तन को कुछ हद तक मौक़े-मौक़े पर सहन करते पर साम्यवादी ढंग के परिवर्तन के कट्टर विरोधी रहे हैं। अपने लिये इन्होंने 'शांतिवादी' और कभी-कभी 'प्रजातंत्रवादी' नाम दिया। दूसरे इनको 'दकियानूसी' नाम दिया करते थे जिसे यह तीसरा दल सदर्प स्वीकार किया करता था। इस विचार के समर्थकों में सर्वप्रधान ब्रिटेन और फ्रांस रहे हैं।

जब तक इन तीन वादों के विचार सिद्धान्त रूप में ही सीमित रहे, कोई विशेष फ़र्क नहीं पड़ा। पर ज्यों ही

फ़ाशिस्टों ने शक्ति के प्रयोग के वल अपने फैलाव की तैयारी आरम्भ की, खलबली मचने लगी। सबसे ज्यादा खलबली 'शांतिवादी' दल में मची। उनकी पहली चेष्टा फ़ाशिस्टवादियों का रुख़ साम्यवादियों से मुठभेड़ लेने की ओर फेर देकर संसार में शांति रखे रहने की हुई। पर यह कई कारणों से जब सफल नहीं हो पाया और फाशिस्टवादियोंने अपना रुख़ तथाकथित शान्तिवादी या प्रजातन्त्रवादियों की ही ओर फेरा तो दूसरे ढंग की बातें होने लगीं। शांतिवादी अपनी रक्षा के लिये अपने विपक्षी साम्यवादियों से मदद की आशा रखने लगे। बहुत अर्से तक बात-चीत चली पर साम्यवादियों ने उस झगड़े से अपने को तटस्थ रखना ही अधिक उचित समझा।

पिछले कई साल के इतिहास पर इस प्रकार दृष्टि डालने से हम उन घटनाओं को भलीभाँति समझने में समर्थ हो सकते हैं। पर इसी के आधार पर यह समझ लेना कि समाज-व्यवस्था सम्बन्धी विरोधी भावनायें ही पिछले कई साल के इतिहास में सबसे अधिक महत्व रखती आयी हैं, भ्रान्ति-मूलक साबित होगा। यदि वैसी विरोधी भावनायें ही सबसे अधिक महत्व रखतीं तब तो सर्वप्रथम एक दूसरे के कट्टर प्रतिद्वंद्वी जरमनी और सोवियत रूस के ही बीच युद्ध छिड़ना चाहिये था। पर इस समय वास्तव में युद्ध छिड़ा है जरमनी

और ब्रिटेन-फ्रांस के बीच। यह वास्तविकता ही हमें इस सम्बन्ध में और अधिक छानबीन करने को बाध्य करती है।

इस छान-बीन के कार्य में एक फौजी विशेषज्ञ का दिखाया रास्ता हमें सही नतीजों की ओर ले जानेवाला दीखता है। क्लाउज़्रेविच के विश्लेपण के अनुसार युद्ध राज-नैतिक दाव-पेंच के सिलसिले का ही एक स्वरूप है। फ़र्क सिर्फ यह हो जाता है कि शांति के दिनों में वे दाव-पेंच कलम और जबान से चलते हैं और युद्ध के दिनों में तोप, टैंक और हवाई जहाज उसके साधन बन जाते हैं।

अब हम यदि राजनैतिक दाव-पेंच की ओर एक दृष्टि डालें तो यही पायेंगे कि समाज-व्यवस्था के सिद्धान्त की अपेक्षा साधारणतया आर्थिक मामले ही अन्तर्राष्ट्रीय-संघर्ष में कहीं अधिक महत्व रखते हैं। बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि इन आर्थिक मामलों की बुनियाद पर ही समाज-व्यवस्था के सिद्धान्त की भीत खड़ी की जाती है।

आर्थिक मामलों की ओर खयाल जाते ही हमारी दृष्टि संसार के आर्थिक बँटवारे पर पड़ती है। जब एक राष्ट्र संसार के बाजार पर कब्जा करने के सिलसिले में दूसरे राष्ट्रों से प्रतिद्वंद्विता नहीं कर पाता तो उसी बाजार पर आधिपत्य जमाने के सिलसिले में युद्ध छिड़ जाता है। १९१४ का महासागर इसी भाँति का युद्ध था।
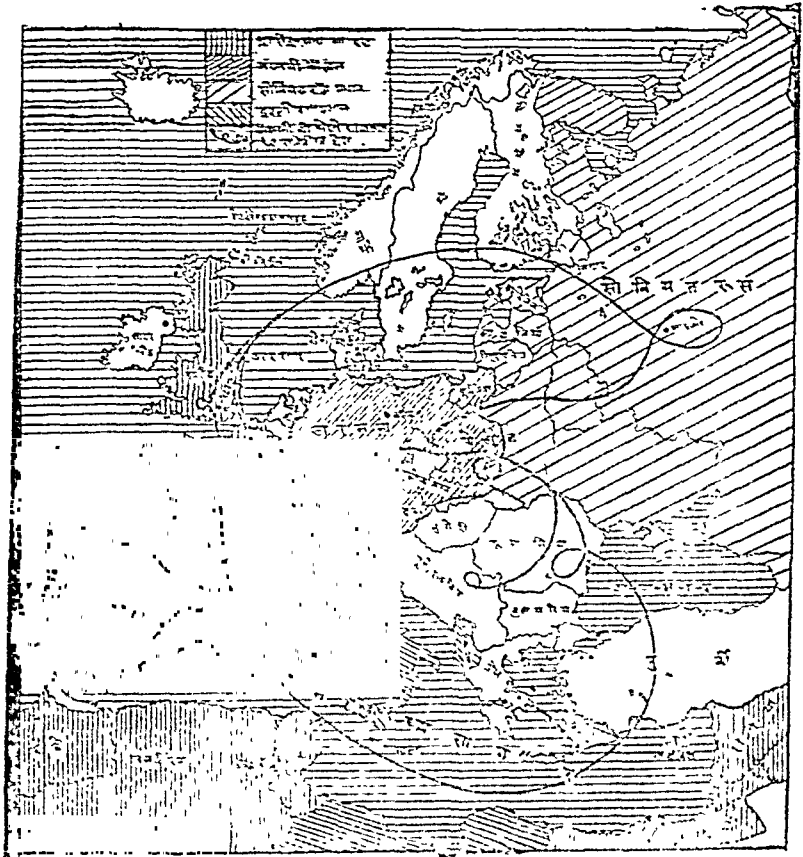
इस युद्ध के बाद भी राष्ट्रों के बीच की आर्थिक प्रतिद्वंद्विता बजाय घटने के और भी आगे बढ़ती गई। इसके परिणाम स्वरूप युद्ध भी अधिकाधिक निश्चित दीखने लगा। यूरोप के राष्ट्र इस समय अपने-अपने हित की दृष्टि से दल क़ायम करने लगे। ब्रिटेन, फ्रांस और बेल्जियम ने जरमनी की ओर से हमले की आशंका कर आपस में बचाव-मूलक सन्धियाँ कीं। फ्रांस को सबसे अधिक ख़तरा था। इसलिये उसने ज़ेकोस्लोवाकिया और सोवियत रूस से भी सैनिक मेल किया। रूमानिया और यूगोस्लाविया को भी जरमनी को घेर रखने में सहायक साबित होने के लिये फ्रांस ने अपनी ओर मिलाया। पोलैंड भी इन्हीं के पक्ष में रहा।

दूसरी ओर जरमनी ने इटली के साथ सहयोग किया। हंगेरी भी इसी के साथ हमदर्दी दिखाने लगा। जरमनी-इटली सहयोग ने अपना पहला प्रभाव स्पेन में दिखाया। वहाँ ब्रिटेन-फ्रांस के उनके उपनिवेशों में जाने के रास्तों में युद्ध के समय अनुचित ढंग से रुकावट डालने के उद्देश्य से मेजोर्का जैसे कई स्थानों पर अपना आधिपत्य जमाया और वहाँ मोर्चेबंदी की।

इसके सिवा और भी कुछ कम महत्व रखनेवाली दलबन्दियाँ हुईं। बाल्कान में यूगोस्लाविया, रूमानिया, ग्रीस और तुर्की ने बाल्कान दल क़ायम किया। उत्तरी यूरोप में

डेनमार्क, आइसलैंड, नार्वे, स्वेडेन और फिनलैंड ने अपना अलग दल निर्माण करने की चेष्टा की। बेल्जियम हालैंड ने भी इसी उत्तरी दल के साथ मिलने का रुख़ दिखाया। बाल्टिक के देशों ने भी अलग दल क़ायम किया।

यूरोप की सब दलबन्दियाँ संसार का आर्थिक बँटवारा करने के ख़याल से ही हुई थीं। ये दलबन्दियाँ स्पष्ट कर दिखला रही थीं कि बँटवारे के सिलसिले में आनेवाला युद्ध भी बहुत अधिक दूर नहीं है।

सबसे पहले जापान ने संसार के इस नये बँटवारे के लिये फ़ौजी आक्रमण शुरू किया। उसने १९३१-१९३४ के बीच चीन से मंचूरिया और जेहोल के प्रान्त छीनकर वहाँ पर अपना 'मंचूको' नाम का साम्राज्य क़ायम किया। इसके बाद के वर्षों में उसने चीन के चाहार, सुइयान, शांटुंग और होपाई के प्रान्त पर भी कब्ज़ा कर लिया। उसके बाद उसने समुद्र-तट के सब इलाकों पर दख़ल जमाया और आज भी पश्चिम की ओर उत्तरोत्तर कब्ज़ा जमाते जाने के लिये लड़ाई छेड़े हुए है।

इटली ने १९३५—१९३७ में सबसे पहले ब्रिटेन-फ्रांस की मौन सम्मति से अपने अफ्रिकन उपनिवेशों में वृद्धि की और बाद में सारे अबीसीनिया पर कब्ज़ा जमाया। जरमनी भी १९३३ में नात्सी (फाशिस्ट समूह) लोगों के हाथ में

आधिपत्य आया। उसने भी वरसाया की सन्धि में लगाये हुए वन्धन तोड़ने आरम्भ कर दिये। अपने शिल्प के विकास के सिलसिले में उसका ध्यान महासमर की भाँति इस बार भी पूर्व की ओर गया। इस बार भी वह बसरा ही पहुँचना चाहता था। पर वह रास्ता दूसरा लेना चाहता था। वारसाव और कीव (रूस के उक्रैन प्रान्त में) होकर वहाँ पहुँचने की उसकी इच्छा थी। पर सोवियत रूस की शक्ति उक्रैन में वहुत दृढ़ता-पूर्वक जमी थी। इसलिये कीव का रास्ता आसान नहीं था। तब जरमनी ने फिर से महासमर के पहलेवाला रास्ता ही अपनाया। उसने आस्ट्रिया को अपने में मिला लिया। १९३८ में उसने यूगोस्लाविया और हंगेरी के साथ व्यापारिक सन्धि करने के साथ-साथ समूचे जेकोस्लोवाकिया पर आधिपत्य जमा लिया। इसके बाद मेमेल लिया और फिर डान्जिग और पोलिश कोरिडोर पर उसकी निगाह गई। खोये हुए जरमन उपनिवेशों को फिर से आत्मसात करने के सिलसिले में जरमन नात्सी नेता इन सब छोटी-छोटी विजयों को नव-प्रबोधित जरमन राष्ट्र की भूख को उत्तेजित करने के लिये चटनी की तरह इस्तेमाल करना चाहते थे। पर ब्रिटेन-फ्रांस अपने को और अधिक नहीं रोक सके। उन्हें जरमनी महासमर के पहले की अपेक्षा अधिक दृढ़ प्रतिद्वन्द्वी दीखने लगा। इसी का परिणाम हुआ

कि पिछले सितम्बर में लड़ाई छिड़ गई। लड़ाई के पहले दो सप्ताह में ही। जरमनी ने लगभग आधे पोलैंड पर कब्ज़ा भी जमा लिया।

वर्तमान इतिहास की ये प्रमुख घटनायें बतलाती हैं कि जब आर्थिक मामले साधारण राजनैतिक दाव-पेंच से हल नहीं हो पाते तो उन्हीं के सिलसिले में बल का प्रयोग होता है, लड़ाई छिड़ती है। इसी लिए इतिहासज्ञ, राजशास्त्री, अर्थ-शास्त्री तथा संसार के मामलों से थोड़ा भी सम्बन्ध रखने वाले लोग आज।आर्थिक मामलों को ही सबसे अधिक महत्व देने लगे हैं। इन्हीं आर्थिक मामलों के कारण संसार की वर्तमान राजनीति में युद्ध भी अपना विशेष स्थान रखता है। युद्ध स्वाभाविक तथा अवश्यम्भावी बन गया है, यहाँ तक कि इस बीसवीं शताब्दी में राजनीति का ही दूसरा नाम युद्ध दे देना अधिक उपयुक्त होगा।

हर एक राष्ट्र को आजकल सबसे बड़ी चिन्ता युद्ध की ही लगी रहती है। एक तरफ़ राजनीतिक दाव-पेंच प्रतिद्वन्द्वी को दबाने के लिए चलते रहते हैं और दूसरी ओर उसी के अनुपात में युद्ध से सम्बन्ध रखने वाली सारी मशीनें चलती रहती हैं। जहाँ तक राष्ट्रों की वाह्य नीति का सम्बन्ध रहता है, उसमें फ़ौजी तैयारी ही सबसे अधिक महत्व रखने वाली चीज़ होती है।

वर्तमान फ़ौजी तैयारियाँ भी वर्तमान ढंग के युद्ध के ही समान वृहत, जटिल और राष्ट्र के वास्तविक प्राण तक पहुँचने वाली होती हैं। १९१४ के युद्ध के समय वाली तैयारियों का ढंग अब बहुत पुराना पड़ गया है। अब की तैयारियों में किसी देश विशेष में बसने वाली सिर्फ़ पूरी आबादी का ही नहीं बल्कि उस देश के सभी प्रकार के आर्थिक साधनों को शामिल रखा जाता है, और ख़ास विशेषता वर्तमान तैयारियों की यह होती है कि उस देश में बसने वाले सब आदमी और सब साधनों को हमेशा युद्ध के उपयोग में ले आने के लिये तैयार रखना पड़ता है। सभ्यता से सम्बन्ध रखने वाले अथवा जीवन तक के ख़ास तक़ाज़े भी बहुत हद तक भुला दिये जाते हैं। उन सब का स्थान अकेला 'युद्ध' ले लिया करता है। शान्ति के दिनों में भी संसार के सब राष्ट्रों की आय का आधे से अधिक भाग और कहीं कहीं तो उसका तीन चौथाई तक युद्ध की ही तैयारी में ख़र्च किया जाता है। राष्ट्र की उपयोगी से उपयोगी दिमाग़ी ताक़त भी युद्ध की तैयारी में ख़र्च होती है और विज्ञान के आधुनिक से आधुनिक आविष्कार आदमी को जल्द से जल्द और अधिक से अधिक संख्या में मार डालने के ही उपयोग में लाये जाते हैं। लम्बी मार की तोपें, माइनें, सुरंगें, आग लगाने वाले और ज़हर तथा घातक रोगों के कीटाणुओं से भरे बम-गोले, दम घोट देनेवाली और

फफोले तथा कोढ़ पैदा कर देने वाली गैसें, मशीनगन-राइफिलें, ग्रेनाड, टैंक, बमवर्षक वायुयान, पनडुब्बियाँ, रेडियो-संचालित युद्ध-यंत्र सभी पुरानी आविष्कृत चीजों को विज्ञान की सहायता से संशोधित कर सुलभ और पूर्ण विनाशकारी बना लिया गया है। बड़े बड़े दिग्गज विज्ञानाचार्य राष्ट्रीय वैज्ञानिक प्रयोग-शालाओं में विनाश के नये नये कल्पनातीत साधन खोजने में लगे हैं। विनाश के जो साधन आज इस समर में नित्य प्रयोग हो रहे हैं, अकेले वे ही समस्त मानव-समाज को एक बार दुनिया से नेस्तनाबूद कर देने के लिये काफ़ी हैं। इनके काट इनसे भी भयानक हैं। और यदि आक्रमणकारी प्रयोगों से रक्षाकारी प्रयोग लोगों की प्राण रक्षा कर भी सके तो ये मनुष्यों के शरीरों को विविध प्रकार के विषों द्वारा इतनी क्षति स्वयं पहुँचा देंगे कि अगर समाज जीवित रहा भी तो क्षय के रोगी की तरह कब्र में पैर लटका कर सिर्फ़ साँस लेता रहेगा।

इसी युद्ध के सिलसिले में राष्ट्र का सजीव तथा सब तरह का निर्जीव धन एक सूत्र में बँधा रहता है। किसी भी व्यक्ति अथवा किसी भी वस्तु के इस सूत्र से अलग रह जाने की गुँजायश नहीं छोड़ी जाती। इसी का यह परिणाम होता है कि यदि बड़े राष्ट्रों के बीच युद्ध छिड़ता है तो उसके समेट में सारा संसार ही आ जाता है। और इसी का परिणाम होता है कि युद्ध बहुत विकराल रूप धारण कर लेता है।

फिर भी खूबी यह रहती है कि युद्ध का वास्तविक भार जिनके ऊपर पड़ता है, उसके कारण जिन्हें सब कुछ झेलना पड़ता है, उन्हें महसूस नहीं करने दिया जाता। उल्टे उन्हें इस खून-खराबी को जारी रखने के लिये ही प्रोत्साहित किया जाता है। इतना ही नहीं युद्ध को मनुष्यता के उच्च आदर्श में शुमार करने की भी धृष्टता की जाती है। हिटलर महाशय के कथनानुसार तो राष्ट्र के जीवन का सुन्दर से सुन्दर स्वरूप युद्ध में ही प्रस्फुटित होता है।

इस युद्ध के सिलसिले में वर्तमान संसार मध्ययुग से भी अधिक खूँखार बनता जा रहा है। इस समय के फाशिस्ट दार्शनिक शान्ति का नाम 'नैतिक पतन' देते हैं और इसे मानव जाति के ह्रास का कारण समझते हैं। युद्ध को वे राष्ट्रीय जीवन को प्रगति की ओर ले जाने वाली स्वाभाविक महौषधि बतलाते हैं। सत्य, सिद्धान्त, वचन-रक्षा, आदर्श, नीति आदि शब्द उनके लिये कोई भी अर्थ नहीं रखते।

निरीह नागरिकों पर का आक्रमण मध्ययुग में भी नाजायज़ क़रार दिया जाता था। पर आज की युद्ध-सम्बन्धी 'सभ्यता' के विकास में वह पूर्णतया उचित माना जाता है। जापान, इटली, जरमनी जैसे फाशिस्ट राष्ट्र निरस्त्र नागरिकों की हत्या को युद्ध की पहली सीढ़ी गिनते हैं। यह हत्या

विना लड़ाई का ऐलान किये भी की जाती है। इस खूँख़ार संहार-क्रिया के समर्थन में दलील यह दी जाती है कि फ़ौजी दृष्टि से यह बहुत ही माकूल साबित होता है, क्योंकि यदि विपक्षी यह महसूस करता है कि उसकी मा, स्त्री, बहन, बच्चे ज़हरीली गैस और भयानक बम द्वारा मौत के मुँह में झोंके जा रहे हैं तो उसकी विरोध में टिकने की ताक़त कम हो जाती है। स्वयं मुसोलिनी ने १९३८ के सितम्बर में यह दलील दुहाराई थी।

उस समय वास्तविक युद्ध की सिर्फ़ तैयारियाँ ही चल रही थीं, लड़ाई के आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों की इटली-अबीसीनिया युद्ध, स्पेन के गृह युद्ध और चीन-जापान युद्ध में आजमाइश की जा रही थी। अब जब फिर से महासमर छिड़ गया है तो मुसोलिनी और हिटलर अवश्य ही इसमें राष्ट्र के जीवन का सर्वांग-सुन्दर स्वरूप देखने लगे होंगे।

पर इस लड़ाई का एक बीभत्स पहलू भी होता है जिसे साधारणतया लोग संहार नाम दिया करते हैं। लड़ाई ज्यों-ज्यों संसार व्यापी होती जाती है संहार-लीला भी सारे संसार को ग्रास करने वाली बनती जाती है। युद्ध की प्रगति का अर्थ हमारा संहार की ओर आगे बढ़ता जाना होता है।

यह संहार बहुत से लोगों को भयभीत करता है। विचारवान इसमें मानव संस्कृति का विनाश देखने लगते हैं।

एक महासमर को अगले महासमर की भूमिका बनता देख वे काँप जाते हैं। वे पूछते हैं—'आखिर इतनी खून-खराबी क्यों ? क्या यह बन्द नहीं की जा सकती ?'

इसे रोक पाना उनकी सामर्थ्य के तो बाहर की बात रहती ही है, स्वयं युद्ध छेड़ने वाले भी इसे नहीं रोक सकते। मनुष्य राष्ट्रों की आर्थिक प्रतिद्वंद्विता के नियमों से इतना जकड़ गया है कि उसकी बुद्धि स्वतंत्र रूप से काम कर ही नहीं पाती। राष्ट्र के धन और जीवन की बागडोर जिन व्यक्तियों के हाथ में आ गयी है उन्हें सिर्फ अपने प्रतिद्वंद्वी के बाजार पर कब्जा करने की फ़िक्र रहती है। सोने की दमक के सामने उन्हें खून का रंग फीका जँचता है।

मनुष्यता को संहार की ओर ले जाने वाले ऐसे व्यक्तियों के हाथ राष्ट्र की बागडोर और कितने दिन तक रहेगी, कहना कठिन है। पर यदि अब की ही भाँति आगे भी उनके ही हाथों में रही तो सारे संसार के साथ-साथ मनुष्यता भी एक महासमर से दूसरे महासमर तक का ही रास्ता नापती चलेगी।

पर सौभाग्यवश लक्षण कुछ दूसरे ढंग के दिखाई देते हैं। युद्ध की चक्की में पीसे जाने वाले लोग पूछने लगे हैं कि आखिर यह युद्ध क्यों छेड़ा गया है ? हम लड़ें तो आखिर क्यों लड़ें ? इस लड़ाई में आखिर हमारा क्या हित-साधन होगा ?

ये प्रश्न आज लोगों को अधिकांश संख्या में युद्ध के वास्तविक स्वरूप, उसके कारण, और उसकी भावी सम्भावनाओं पर दृष्टि डालने के लिये, उनपर विचार करने के लिये, वाध्य करते हैं। उनके ये ही विचार, उनकी वास्तविकता की ओर की यही दृष्टि, उनके भविष्य के कार्यों की नीति और उसका ढर्रा निर्धारित करेगी। युद्ध की मशीन में उनका अनिच्छा-पूर्वक जोत दिया जाना भी उन्हें इसी से महसूस होगा। और यही दिखायगा कि अब संसार के लिये आने वाले दिन कैसे हैं।
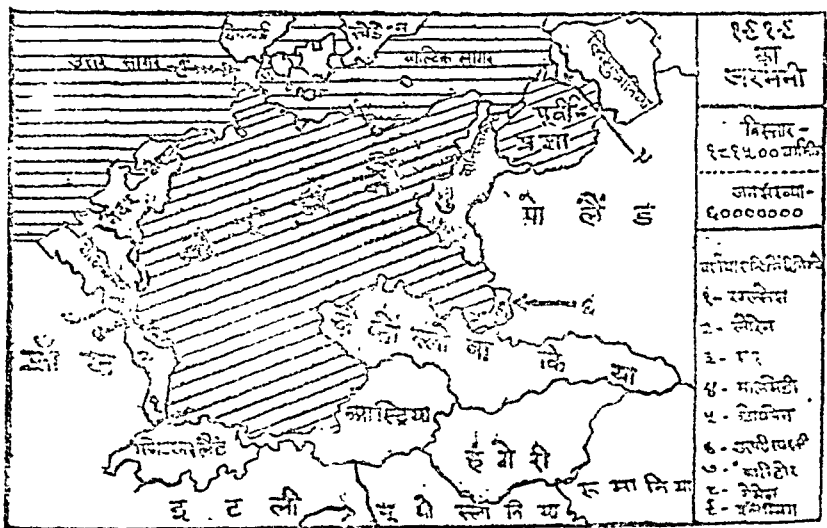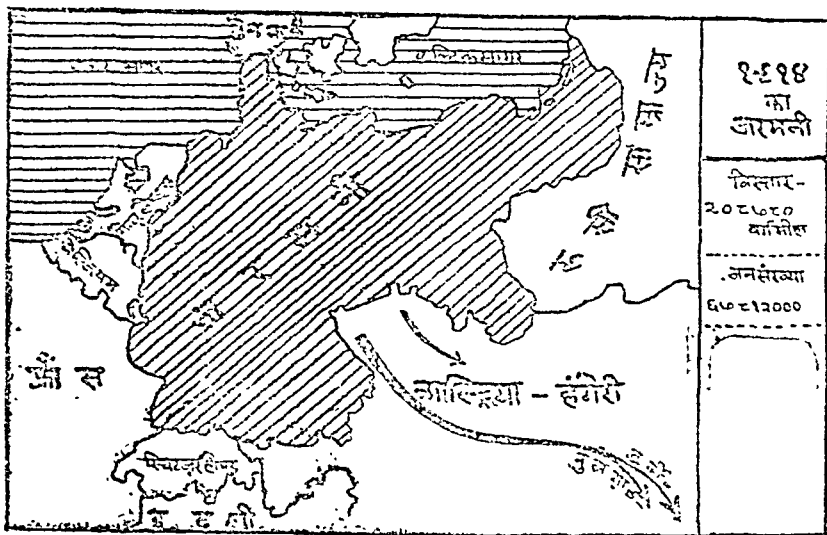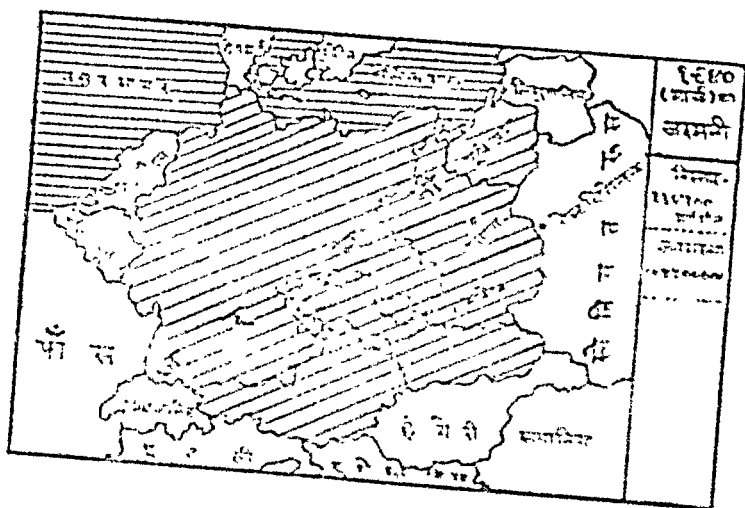
के शिल्प-प्रधान देश रहते हुए भी उसका स्थान बहुत पीछे पड़ गया। जब उसे अपने तैयार माल की खपत और कच्चा माल प्राप्त करने के लिये बाज़ार की तीव्र आवश्यकता महसूस हुई तो उसने अपना रुख पूरब की ओर फेरा। उसने आस्ट्रिया हंगेरी, बुलग़ारिया और टर्की के रास्ते अपना फैलाव आरम्भ किया। पर इससे इंगलैंड और फ्रांस के स्वार्थ पर भारी आघात पहुँचता था। अतः ये दोनों जर्मनी का रास्ता रोककर खड़े हो गये। इसका परिणाम हुआ सन् १९१४ का महासमर।

महासमर के बाद वर्साया की सन्धि के आधार पर संसार का दूसरा बँटवारा हुआ। इंगलैंड और फ्रांस ने जर्मनी के सब उपनिवेश छीन लिये। उसकी यूरोपीय सीमाओं में भी भारी परिवर्तन किया गया। आल्सेस और लोरेन के प्रान्त फ्रांस ने ले लिये, औएपेन और माल्मेडी के प्रान्त बेल्जियम को मिले, श्लेस्विग का भाग डेन्मार्क के हिस्से में आया, मेमेल प्रदेश लिथुआनिया को दिया गया, कौरीडोर प्रदेश (पश्चिमी प्रशिया, पोज़ेन और उत्तरी साइलेसिया के प्रदेश) पोलैंड ने और साइलेशिया का एक और हिस्सा ज़ेकोस्लोवाकिया ने लिये। सार प्रदेश नाम के लिये राष्ट्र संघ के पर वास्तव में फ्रांस के अधीन रहा।

वर्साया की सन्धि का उद्देश्य संसार के बँटवारे से जरमनी के भाग को हटा देना, इंगलैंड और फ्रांस की प्रतिद्वंद्विता से उसे पीछे

ढकेल देना और सैनिक दृष्टि से पहली श्रेणी के राष्ट्र से गिराकर निम्नश्रेणी का राष्ट्र बना देना था। सिर्फ इतना ही नहीं महासमर की क्षति पूर्ति (रिपरेशन) का बहुत बड़ा भार जरमनी को बर्दाश्त करना पड़ा। उसे रेल, जहाज, कोयला, रसायनिक पदार्थ (केमिकल) और सामान तथा नक़द रक़म मिलाकर यंग महाशय की योजना काम में आने तक ४८ अरब मार्क (लगभग ३२ अरब रुपये) देने पड़े। यंग-योजना के मुताबिक उसे ४० अरब मार्क का और भी देनदार ठहराया गया। इस कर्ज़ की जितनी रक़म वसूल हो सकी उसका अधिकांश भाग फ्रांस और बेल्जियम ने अपनी जरमनी से लगी सीमा को पुख्ता करने में लगाया।

इसके सिवा वर्साई की सन्धि द्वारा ब्रिटेन और फ्रांस ने जर्मनी को घेर कर रखने और उसकी प्रगति रोक रखने की चेष्टा की। (देखिये नक्शा पृ॰ ५) युद्धोपरांत अपने सबसे बड़े शत्रु जरमनी को बिलकुल निर्बल कर देने के कारण फ्रांस यूरोप में सैनिक तथा अन्य दृष्टि से भी सबसे प्रबल राष्ट्र बन गया। पश्चिम में बेल्जियम और पूर्व में पोलैंड, ज़ेकोस्लोवाकिया, रूमानिया और यूगोस्लाविया के द्वारा उसने जरमनी को घेर रखने की व्यवस्था की। फ्रांस की इस शक्ति को तुलना में लाने के लिये ग्रेट ब्रिटेन ने उत्तर और बाल्टिक सागर के तट के देश हालैंड, डेनमार्क, आइसलैंड, नार्वे, स्वीडेन, फिनलैंड, इस्थोनिया लाटविया, लिथुआनिया और डानज़िग,

तथा दक्षिणी यूरोप—पुर्तगाल, स्पेन, और ग्रीस में अपना प्रभुत्व बढ़ाया।

पर १९३० में संसारव्यापी आर्थिक संकट आरम्भ होने के कारण परिस्थिति बदलने लगी। आर्थिक संकट के कारण ब्रिटेन और फ्रांस की मध्य और दक्षिण-पूर्व यूरोप में लगी पूँजी का विकास रुक गया। शिल्प का विकास पीछे की ओर हटने लगा। कल कारखाने टूटने लगे। प्रत्येक देश में बेकार लोगों की संख्या बढ़ने लगी। जरमनी में तो बेकार लोगों की संख्या १९३२ में सत्तर लाख तक पहुँच गयी। उसके लिये अपने निज को ही सम्हाल पाना कठिन हो रहा था, महासमर का हर्जाना देने की तो बात बहुत दूर रही।

पिछले एक साल में जरमनी की वाह्यनीति में कई आश्चर्य जनक परिवर्तन हुए हैं। जब उसे इस बात का पक्का विश्वास होगया कि उसका विस्तार रोकने के लिये ब्रिटेन लड़ाई में अवश्य ही कूदेगा तो उसने अपना रुख़ पूर्व की ओर फेरा। किसी भी भाँति सोवियत रूस को इस लड़ाई में तटस्थ रखना उसके लिये जरूरी हो गया।

इसी विचार से १९३९ की जुलाई में जरमनी की ओर से गुप्त तरीके से हेरफ़ानपापेन मास्को भेजे गये। जहाँ तक अन्दाज़ा लगाया जाता है, उन्होंने सोवियत को खुश करने के लिते बहुत-सी

सुविधायें देना स्वीकार किया। जरमनी ने उक्रैन और बाल्टिक देशों पर अपना प्रभुत्व जमाने की चेष्टा छोड़ दी और सोवियत रूस का उन देशों में अपना प्रभुत्व बढ़ाते जाना स्वीकार किया। इस कारण बालकान देश भी स्वाभाविक ही सोवियत के प्रभुत्व क्षेत्र में आ जाते थे। इसी साल २० अगस्त को जरमनी ने सोवियत रूस के साथ एक व्यापारिक सन्धि की जिसके अनुसार जरमनी ने रूस को बीस करोड़ मार्क (इस बीच मार्क की कीमत बढ़ जाने के कारण लगभग उतने ही रुपये) उधार दिये। इसके चार दिन ही बाद दोनों देशों के बीच एक दूसरे पर हमला न करने और दोनों देशों से संबंध रखने वाले मामलों पर आपस में सलाह मशविरा करने के मकसद की पन्द्रह साल के लिये एक सन्धि पर हस्ताक्षर हो गये।

जरमनी ने यह सन्धि वर्तमान युद्ध के समय उसके सामने आनेवाली अड़चनों का ख्याल रखकर ही की थी। इससे जरमनी और सोवियत के बीच का आर्थिक सम्बन्ध बहुत ही दृढ़ हो गया। इसी के आधार पर आज जरमनी के इंजिनियर और शिल्पविशेषज्ञ रूस जा रहे हैं और रूस से बहुत सा कच्चा माल जरमनी आ रहा है। इन दोनों देशों के सम्मिलित ज़ोर के ही कारण बाल्टिक और स्कैंडिनैवियन देशों का ब्रिटेन के साथ का व्यापार सीमित किया जा सका है। साथ ही वे दोनों मिलकर टर्की के ऊपर कैसा ज़ोर डाल सकते हैं यह भी कम नहीं है।

पर रूस के साथ इस प्रकार की सन्धि करने के लिये जरमनी को वाध्य करने वाला उसका सैनिक तक़ाज़ा था। जरमनी के सैनिक इतिहास में काऊँट श्लिफ़ेन का बनाया हुआ प्लान (योजना) खास महत्व रखता आया है। इस प्लान में यह बिलकुल स्पष्ट कर दिखा दिया गया है कि जरमनी के लिये फ्रांस और रूस दोनों पर एक साथ हमला करना असम्भव है और जरमनी की जीत तभी हो सकती है जब वह अपनी सारी शक्ति एक ही ओर और वह भी पश्चिमी मोर्चे पर फ्रांस की ओर लगाये। यह प्लान सिर्फ़ रूस को तटस्थ कर ही पूरा किया जा सकता है और यही इस समय जरमनी ने किया भी है।

ब्रिटेन और फ्रांस के आर्थिक घेरे से जितनी दूर तक सम्भव हो अपने को बचाये रखना जरमनी के जीवित रहने के लिये आवश्यक था। इस सम्बन्ध में रूस ही एक ऐसा देश है जो पर्याप्त मात्रा में जरमनी को लोहा, कच्चा माल और ख़ास कर पेट्रोलियम (मिट्टी का तेल) और खाद्यपदार्थ दे सकता था। जरमनी ने इसकी व्यवस्था कर ली, जिससे जरमन राजनीतिज्ञों की दृष्टि से अब पिछले महासमर की अपेक्षा अधिक दिनों तक टिके रहने का माद्दा उसमें आ गया है। इसी बल पर जरमनी अब अपने को 'ब्लोकेडप्रूफ़' (घेरे से सुरक्षित) कहने लगा है।

आज जरमनी के लिये पूर्वी मोर्चा नहीं रहा। यदि रूस भी

उससे लड़ता तो उसे अपनी बहुत-सी सेना इस तरफ भी रखनी पड़ती। अब पूर्व की तरफ उतनी सेना रखने की जरमनी को आवश्यकता नहीं है। इसीलिये आज वह अपनी सारी सैन्य-शक्ति पश्चिमी मोर्चे पर केन्द्रीभूत कर पाने में समर्थ हुआ है।

पोलैण्ड
सोवियत रूस
प्राग
रूमानिया
बुखारेस्ट
सोफिया
बुलगारिया

डैन्यूब-क्षेत्र

युद्ध के समय जरमनी को सबसे बड़ा ख़तरा कच्चा माल और खाद्य पदार्थों की कमी पड़ जाने का रहता है। इसकी व्यवस्था करना उसके लिये सबसे आवश्यक है। इस काम के लिये उसके सब से निकट डैन्यूब क्षेत्र और वालकान प्रदेश हैं। अकेले सिर्फ़ रूमानिया के तेल से वह अपने युद्ध के समय की एक तिहाई ज़रूरियात पूरी कर ले सकता है। इसके सिवा डैन्यूब प्रदेश में लोहा, तांबा,

गोश्त, गल्ला और मक्खन इत्यादि भी मिल सकते हैं। ये चीज़ें जरमनी को जीवित रखने के लिये सबसे अधिक आवश्यक हैं। इसी-लिये जरमनी का ध्यान डैन्यूब क्षेत्र की तरफ सबसे पहले गया। उसके फैलाव का भी सबसे उपयोगी और सुगम यही रास्ता था।

अपनी उपयोगिता के कारण यह क्षेत्र ई० सन् १८५६ से ही अन्ताराष्ट्रीय कमीशन के अधीन रहता चला आया है। महासमर के बाद इस कमीशन में सिर्फ़ ब्रिटेन, फ्रांस, रूमानिया और इटली रह गये थे। अभी कुछ साल पहले डैन्यूब के रास्ते पूर्व की ओर ज़ोरों से जरमनी का आर्थिक प्रवेश होने लगा है। आस्ट्रिया को अपने में सम्मिलित कर लेने के बाद वह काफ़ी दूर आगे आ गया था।

जरमनी के व्यापार का तरीक़ा भी औरों से भिन्न रहा है। वह अपने देश में तैयार किये गये माल से डैन्यूबक्षेत्र के कच्चे माल का विनिमय करता है। जब से डैन्यूब क्षेत्र जरमनी के प्रभाव क्षेत्र में आया है वह अपने देश का बहुत कुछ फालतू ढंग का माल इन देशों में भेजने लगा है और उनका उपयोगी कच्चा माल विनिमय में लिया करता है। इटली के साथ सहयोग हो जाने के बाद डैन्यूब के वैदेशिक व्यापार का एकाधिकार जरमनी के हाथ में चला आया है।

डैन्यूब क्षेत्र के देशों का सैनिक दृष्टि से भी कुछ कम महत्व नहीं है। फ्रांस और इंग्लैंड ने जरमनी को घेर रखने की जो व्यवस्था

की थी उसमें ज़ेकोस्लोवाकिया सबसे अधिक महत्व रखता था। जरमनी का फैलाव रोकने के ही ख़याल से फ्रांस ने सोवियत रूस के साथ सैनिक सहयोग किया था। ज़ेकोस्लोवाकिया भी इस सहयोग का एक सदस्य था। उस समय यह व्यवस्था की गयी थी कि यदि जरमनी ने किधर ही अपना प्रसार शुरू किया तो उसके ऊपर इंगलैंड और फ्रांस की ओर से तो आक्रमण हो ही साथ ही पूर्व की तरफ़ से भी सोवियत सेना पोलैंड और ज़ेकोस्लोवाकिया के रास्ते आगे बढ़े। ऐसी हालत में जरमनी को दो मोर्चों पर लड़ना पड़ता। और उसे परास्त कर देना आसान होता। इसी लिये सोवियत हवाई सेना की सुविधा का ख़याल रखते हुए बहुत से हवाई अड्डे जेकोस्लोवाकिया में तैयार किये गये थे। स्वयं ज़ेकोस्लोवाकिया ने अपनी जरमनी की ओर की सीमा पर प्रसिद्ध फ्रेंच मैजिनोलाइन के ढंग पर बहुत ही पक्की किलेबंदी कर रखी थी।

पर जरमनी की सीमा से लगे ज़ेकोस्लोवाकिया के सुडटेनलैंड नामक प्रदेश में बसनेवाले जरमन जाति के ही हैं। उनके बीच ज़ेक सरकार के विरुद्ध बग़ावत फैलाने की चेष्टा जरमनी बहुत पहले से ही कर रहा था। सन् १९३८ के सितम्बर में जब उसने देखा कि इंगलैंड या फ्रांस दोनों में किसी की भी लड़ाई में उतरने की तैयारी नहीं है तो उसने ज़ेक सरकार के आतंक से सुडेटेन जरमन लोगों को बचाने का बहाना कर ज़ेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण करने के लिये

उसकी सीमा पर अपनी बहुत सी सेना भेज दी। इंगलैंड और फ्रांस इससे बहुत भयभीत हो गये। उन्होंने जरमनी के साथ ३० सितम्बर १९३८ को म्यूनिख़ का समझौता किया जिसमें बिना एक कारतूस ख़र्च किये जरमनी को सुडेटेनलैंड का इलाक़ा मिल गया।

इस इलाक़े के हाथ में आते ही जरमनी ने ज़ेकोस्लोवाकिया द्वारा किया गया सरहद पर का सैनिक मोर्चा उखाड़ फेंका। जरमनी के लिये पूर्व की ओर और अधिक बढ़ने का रास्ता साफ़ था। कुछ ही महीने बाद उसने १६ मार्च १९३९ को लगभग सारा जेकोस्लोवाकिया अपने साम्राज्य में मिला लेने की घोषणा कर दी। जरमनी की सीमा इससे ५४२०७ वर्गमील विस्तृत हो गयी और एक करोड़ ४६ लाख आबादी उसके हाथ लगी। इसमें तीन लाख आदमी ज़ेक सेना में शिक्षा पाये हुए हैं।

जरमनी के सहयोगी इटली को भी इससे प्रोत्साहन मिला और उसने भी ७ अप्रैल १९३९ को अलबानिया पर अपना आधिपत्य जमा बालकान के उस देश को अपने साम्राज्य में मिला लिया। इससे इटालियन साम्राज्य में १०६२९ वर्ग मील भूमि और दस लाख की आबादी की वृद्धि हुई।

पश्चिमी यूरोप के राष्ट्रों ने जरमनी-इटली की संयुक्त शक्ति के साथ युद्ध की संभावना का ख़याल रखकर डैन्यूब क्षेत्र में जिस प्रकार की फ़ौजी दलबन्दी का बन्दोबस्त कर रखा था वह पिछले

कई महीनों में बिलकुल ही पलट गया है। उस समय ब्रिटेन-फ्रांस अपनी ओर सोवियत रूस को मिलाने की चेष्टा में थे, पर यह सम्भव नहीं हो सका। दूसरी ओर इटली भी अब तक तटस्थ है। इन्हीं कारणों से डैन्यूब क्षेत्र अब तक युद्ध क्षेत्र में परिणत नहीं हो पाया है।

हॉलैण्ड
पेरिस
पोलैण्ड
सार्डिनिया
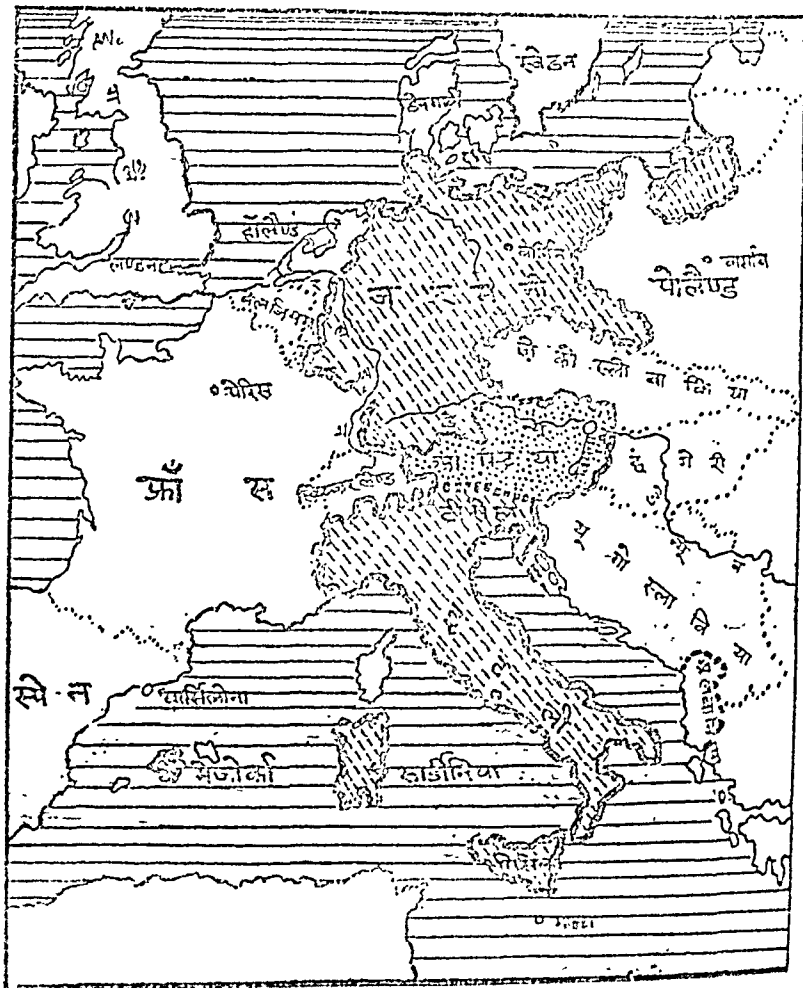
जरमनी-इटली सहयोग

टीरोल प्रदेश का मामला लेकर जरमनी और इटली के बीच सहयोग होना कठिन दीखता था। पर इन दोनों ने यह देखा कि यदि ब्रिटेन और फ्रांस के घेरे से बाहर निकलना चाहते हैं और यथार्थ में अपना फैलाव बढ़ाना चाहते हैं तो आपस में घनिष्ट सहयोग का होना अति आवश्यक है। इस सहयोग से दोनों को

राजनीतिक, आर्थिक, और सामरिक दृष्टि से लाभ पहुँचने की आशा थी।

यूरोप की राजनीति में अकेले जरमनी या इटली की आवाज़ अधिक महत्व नहीं रखती थी पर दोनो की सम्मिलित आवाज़ शीघ्र ही अपना गहरा प्रभाव डालने लगी। इन दोनों का सहयोग सबसे पहले स्पेन के गृह-युद्ध में कार्यान्वित हुआ। दोनों ने जनरल फ्रैंको की मदद कर उसे विजयी बनाया। इसमें सहयोगियों का ख़ास उद्देश्य स्पेन की भौगोलिक स्थिति से फ़ायदा उठाना था। विशेषकर पश्चिमी भूमध्य-सागर में उससे बहुत बड़ा फ़ायदा उठाया जा सकता है। स्पेनके मेजोर्का जैसे द्वीपों में हवाई और जलसैनिक अड्डे कायम कर इंगलैण्ड और फ्रांस दोनो का ही उस हल्के में सिर्फ़ प्रभुत्व ही कम नहीं किया जा सकता बल्कि उन दोनों के पूर्व की ओर आने के निकटवर्ती समुद्री रास्ते में भी बहुत बड़ी रोक लगा दी जा सकती है।

इन सहयोगी शक्तियों के लिए इटालियन साम्राज्य और वहाँ की नौका-शक्ति इनका अफ्रिका और एशिया की ओर से सम्बन्ध जोड़े रहने में पुल का काम कर सकती है। इस पुल द्वारा अफ्रिका तथा एशिया की ओर से भी बहुत-सा उपयोगी कच्चा माल ढोकर जरमनी पहुँचाया जा सकता है।

पूर्वी यूरोप और बाल्कान के दायरे से ब्रिटेन और फ्रांस का

जरमनी-इटली सहयोग

प्रभुत्व कम करने में बर्लिन-रोम सहयोग बहुत दूर तक कारगर साबित हुआ है। इसके लिए सबसे पहली आवश्यकता थी कि बाल्टिक सागर से लेकर भूमध्य सागर तक के बीच ये सहयोगी राष्ट्र अपने विपक्षियों के लिए कोई भी रास्ता न छोड़ें। इसी नीयत से १३ मार्च १९३८ को जरमनी ने आस्ट्रिया को अपने में मिला लिया। इससे जरमनी का क्षेत्रफल ३२,३६९ वर्ग मील बढ़ गया और उसकी आबादी में ६६ लाख की वृद्धि हो गई।

पोलैंड

आस्ट्रिया और ज़ेकोस्लोवाकिया के दख़ल से प्रोत्साहित हो और इंग्लैंड-फ्रांस की झिझक देखकर जरमनी का साहस और भी बढ़ा। अब उसके लिये वर्साया की सन्धि का कोई महत्व नहीं रह गया। इसीलिये उस सन्धि द्वारा लिथुआनिया को दिये गये मेमेल के महत्वपूर्ण प्रदेश पर बिना किसी विशेष अड़चन के उसने

२२ मार्च १९३९ को कब्ज़ा कर लिया। इससे जरमनी का क्षेत्रफल १०९९ वर्ग मील तथा आबादी १५१००० बढ़ गयी।

पर जरमनी की वास्तविक समस्या अब भी हल नहीं हो पायी थी। इस समय उसे सबसे अधिक खलनेवाली बात वर्साया की सन्धि द्वारा पोलैंड को दिया गया कोरिडोर का इलाक़ा तथा बाल्टिक तट पर स्थित दान्तिसग नगर था जो जरमनी से अलग कर लिया गया था। इस कोरिडोर के कारण जरमनी के दो अलग-अलग टुकड़े हो जाते थे। पूर्वी प्रशिया (प्रशा) का प्रदेश बाकी जरमनी से बिलकुल अलग हो जाता था। इस बीच के पचास मील वाले कोरिडोर प्रदेश को फिर से अपनाने तथा उससे सम्बन्ध रखती समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा जरमनी बहुत पहले से कर रहा था।

जरमनी का एक प्लान था कि पोलैंड कोरिडोर का इलाका जरमनी के हवाले कर दे और उसकी क्षतिपूर्ति रूस के उक्रैन प्रदेश पर दख़ल कर कर ले। इस प्लान को हिटलर की सरकार ने आधिपत्य में आते ही ब्रिटेन के सामने भी रखा था। पर इस प्लान को सैनिक दृष्टि से कार्यान्वित कर पाना सम्भव नहीं हो सका।

पिछले कई साल से जरमनी और रूस के बीच के सैद्धान्तिक विरोध से कहीं अधिक जरमनी और ब्रिटेन-फ्रांस के बीच का आर्थिक विरोध महत्व रखने लगा था। यह आर्थिक विरोध पिछले साल उस सीमा तक पहुँच गया कि जरमनी को अपने सैद्धान्तिक प्रतिद्वंद्वी

रूस से ख़ास तरह का समझौता कर लेना पड़ा। इसी समझौते में पोलैंड को बाँट लेने की बात भी तय हुई।

पोलैंड का बँटवारा इतिहास में नई बात नहीं है। इसका तीन बार पहले भी बँटवारा हो चुका है। आख़िरी बँटवारा रूस, प्रशिया और आस्ट्रिया के बीच ईसवी सन १७९५ में हुआ था। महायुद्ध के बाद फिर से स्वतन्त्र पोलिश राष्ट्र की स्थापना की गयी थी जिसमें जरमनी से लिये गये कोरिडोर प्रदेश के साथ-साथ रूस से १६२० के युद्ध के बाद लिये गये गौरांग रूस (ह्वाइट रशा) और उक्रैन का बहुत बड़ा भाग था। साथ ही पोलैंड ने लिथुआनिया पर हमला कर उसकी राजधानी विलना तथा उसके उत्तर पूर्व का बहुत बड़ा प्रांत छीन लिया था।

सन १९३९ के अगस्त में जरमनी ने दान्त्सिग को अपने साम्राज्य में मिला लेने की तैयारी की। पोलैंड ने इसका विरोध किया। इंगलैंड और फ्रांस ने पोलैंड का समर्थन किया। पर जरमनी की तैयारी उस हद तक पहुँच चुकी थी कि उसके लिये अपने को रोक पाना असम्भव-सा हो गया था। उसने पहली सितम्बर १९३९ को पोलैंड पर हमला कर दिया। जरमनी की सैन्यशक्ति विशेष कर हवाई और टैंक मोटर शक्ति के सामने पोलैंड अधिक दिन न टिक सका। दो सप्ताह के ही भीतर आधे पोलैंड पर जरमनी का कब्ज़ा हो गया। पोलैंड के सर्वोच्च

राज्याधिकारियों के साथ वहाँ के शासक वर्ग के सब सदस्य विदेशों में भाग गये।

१७ सितम्बर १९३९ को रूस भी १९२० की लड़ाई के बाद खोये हुए अपने प्रदेशों पर फिर से अधिकार जमाने के लिये पोलैण्ड में आगे बढ़ा। पोलैंड जरमनी द्वारा इतना तबाह हो चुका था कि रूस को आगे बढ़ने में कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। चन्द दिनों के ही भीतर आधे पूर्वी पोलैंड पर उसका कब्ज़ा हो गया।

२९ सितम्बर १९३९ को जरमनी और रूस ने समूचे पोलैंड के बँटवारे की निश्चित सीमा निर्धारित कर ली। इसके अनुसार ह्वाइट रशिया और उक्रैन के प्रांत रूस के तथा जरमन तथा पोलिश आबादी-प्रधान प्रदेश जरमनी के हाथ आये। १९१९ में पेरिस कान्फ्रैंस ने पोलैंड और रूस की सीमा निर्धारित करने के लिये जो कर्ज़न लाइन बनायी थी बहुत कुछ उसी के ढंग की यह नई बँटवारे की सीमा है।

इन नये प्रान्तों के आ जाने से सोवियत रूस की सीमा पश्चिम की ओर मध्य यूरोप में दो सौ मील बढ़ आयी है और अब उसकी सीमा लिथुआनिया, पूर्वी प्रशा, हंगेरी और रूमानिया से लग गयी है। रूस ने इसी बीच इन नये प्रान्तों के बाशिन्दों को एक एक गाय और बारह बारह एकड़ ज़मीन देकर इन प्रान्तों को सोवियत व्यवस्था के ढंग में परिणत कर लिया है।

पोलैंड

पोलैंड के बँटवारे से मोटेतौर पर ७५,२०० वर्गमील भूमि और साढ़े सत्रह लाख आबादी जरमनी के हाथ लगी। इस क्षेत्र से उसे (चाहे सीमित परिमाण में भले ही हो) कोयला, तेल, कारख़ाने और बहुत उपयोगी खाद्य पदार्थ भी मिलेंगे। पर सबसे बड़ा उसका यह फ़ायदा हुआ है कि वर्तमान लड़ाई में वह पूर्वी मोर्चे से बिल्कुल निश्चिन्त हो गया है और अब अपनी सारी शक्ति पश्चिम के मोर्चे पर लगायेगा।

उत्तर सागर
इंगलैंड
हालैंड
हेग
लंडन
डोवर
रोतरडाम
डोर्टमुंड
कोल
म
फ्रांकफुर्त
मनहाइम
कार्ल्सरूहे
र्म
ब्रुसेल
लियेज
लिल
पेरिस
वर्दों
मेत्स
स्त्रासबुर्ग
बासल
स्विटज़रलैंड
जीनीवा
फ्रांस
इटली
भू मध्य सागर

पश्चिमी मोर्चे की क़िलेबन्दियाँ :
मैजिनो तथा सीगफ्रीड लाइनें

युद्ध से सम्बन्ध रखनेवाले और विभागों के ही समान मोर्चे-बन्दी की कला में भी गत दस वर्षों में आश्चर्यजनक प्रगति हुई है। फ्रांस की मैजिनो लाइन इस प्रगति का संसार में सबसे सुन्दर नमूना है। यह लाइन फ्रांस की जरमनी से मिलनेवाली सीमा पर बहुत ही पुख़्ता बनी है। आल्सस से लेकर बेल्जियम की सीमा तक

इसे लोहे की पुख़्ता से पुख़्ता दीवार नाम दे देने से भी इसकी विशेषता का ज्ञान नहीं हो सकता।

ऊपर से देखने पर मोर्चेबन्दी की बहुत सी चीज़ें दिखाई नहीं देतीं स्थान स्थान पर पक्के सीमेंट के स्तूपों के भीतर से विशाल तोपें जरमनी की ओर मुँह किये तनी हुई खड़ी दीखती हैं। पहाड़ी घाटियों में टैंकों को फँसाने के लिये दिखावटी घास और भ्रामक खेतीबारी से ढके गहरे गढ्ढे हैं, और लोहे तथा सीमेंट के पुख़्तापाए खड़े किये गये हैं। इनके अलावा बिजली की करेंट पास करते हुए तारों के जाल एक सिरे से दूसरे सिरे तक लगे हैं।

पर यह ऊपरी तैयारी ढकी हुई तैयारी की तुलना में कुछ भी नहीं है। ज़मीन के नीचे हज़ारों अफ़सर तथा लाखों सैनिकों के रहने की व्यवस्था है। उसमें रहने के घर सर्दी के दिनों में बिजली से गरम रखे जाते हैं। घायलों के लिये अस्पताल भी बने हैं। उसके तहख़ानों में महीनों तक की रसद, हथियार, गोला-बारुद इकट्ठी करके रखी गयी है। इसके सिवा टेलीफ़ोन के दफ्तर, और बिजली पैदा करने के कारख़ाने भी बने हुए हैं। नीचे ही नीचे एक मोर्चे से दूसरे मोर्चे पर जाने के लिये एलेक्ट्रिक रेलें तक बनी हुई हैं। कई मोर्चों के जंकशनों पर तो ज़मीन के नीचे सात-सात मंज़िलें हैं और गहराई सवा तीन सौ फ़ीट तक चली गयी है।

सन् १९२९ में इन मोर्चों का काम आरम्भ किया गया था।

प्रधान मोर्चों पर लगभग ५६ लाख रुपये एक-एक मील की मोर्चेबन्दी पर ख़र्च किये गये हैं। इस तरह की किलेबन्दी साठ मील तक जरमनी की ख़तरनाक सरहद पर की गई है। इन किलों में ज़हरीली गैस भी प्रवेश नहीं कर सकती।

इस तरह की किलेबन्दी की सिर्फ एक ही क़तार हो यह बात भी नहीं है। आज कल की युद्ध प्रणाली में एक क़तारवाले मोर्चों की प्रथा उठ गई है। वर्तमान मोर्चे कतार के रूप में न रहकर क्षेत्र के रूप में फैले रहते हैं। सरहद के मोर्चे पर की पहली कतार से देश के भीतर की ओर की आख़िरी क़तार तक का फासला कभी-कभी पन्द्रह, बीस मील तक का होता है।

१९३४ में उक्त किलेबन्दी के पीछे एक और मोर्चे की लाइन तैयार करने में हाथ लगाया गया था। साथ ही बेल्जियम की ओर से जरमनी के आक्रमण की आशंका कर १९३६ में बल्जियम की सरहद पर इंगलिश चैनेल तक किलेबन्दी की एक लाइन बढ़ा दी गई थी। स्विटज़रलैण्ड की ओर से भी जरमनी आक्रमण कर सकता है इस भय से जेनीवा के पास तक मोर्चेबन्दी पक्की कर ली गई है। इन वृद्धियों के कारण मैजिनो लाइन आज ६०० मील लम्बी हो गई है। सिर्फ सन् १९३७ तक ही इसमें सात अरब फ्रैंक ख़र्च किये जा चुके थे।

इस प्रकार का अभेद्य मोर्चा तैयार कर लेने के बाद से फ्रांस

अपने को जरमनी के आक्रमण के ख़तरे से बहुत दूर तक सुरक्षित समझने लगा है। जरमन सेना की आश्चर्य-जनक विद्युत-संग्राम-प्रणाली (ब्लित्च क्रीग) भी इस लाइन को नहीं तोड़ सकती। यह लाइन बहुत दूर तक राइन नदी के किनारे-किनारे गई है। जरमन सेना यदि किसी प्रकार राइन नदी पार भी कर ले तो भी मोर्चों को हिलाना तक उसके लिए बहुत कठिन साबित होगा। पर इस प्रकार के जरमन हमले की हक़ीक़त समझ पाने के लिए मैजिनो लाइन के जवाब में उनकी की गई तैयारियों पर हमें सबसे पहले ध्यान देना होगा।

सन १९३६ तक जरमनी पर वर्साया की सन्धि द्वारा लगाये गये बहुत से प्रतिबन्ध हिटलर की सरकार ने तोड़ दिये थे। इन्हीं में राइनलैंड में फिर से जरमन सेना न रखने की भी बात थी। इसी साल से जरमनी ने राइनलैंड में न सिर्फ़ सेना रखना आरम्भ किया बल्कि फ्रांस की मैजिनोलाइन के जवाब में सीगफ्रीडलाइन नाम की क़िलेबन्दी अपनी फ्रांस से लगी सीमा पर आरम्भ कर दी। यह मोर्चेबन्दी हालैंड की सरहद पर के एमरिख नामक स्थान से लेकर जरमनी की स्विटज़रलैंड से मिली सीमा पर बाजेल के पास तक तैयार कर ली गयी है। यह किलेबन्दी भी बहुत अंश में मैजिनो-लाइन से मिलती-जुलती है पर दोनों में भेद भी कम नहीं है।

मैजिनोलाइन का भेद तथा उसकी मोर्चेबंदी की ख़ूबियाँ फ्रांस

ने शुरू से ही गुप्त रखने की चेष्टा की थी। पर जब से ज़ेकोस्लोवाकिया जरमनी के कब्जे में आया, मैजिनोलाइन के बहुत से भेद जरमनी को मालूम हो गये हैं। इसका कारण यह है कि ज़ेक सीमा पर क़िलेबंदी तैयार करवाने वाले मुख्य इंजिनियर मैजिनोलाइन बनाने वाले ही थे।

पर जरमनी ने अपनी सीगफ्रीड लाइन को अपनी सैनिक सुविधाओं का ख़याल रखकर ही उसे मैजिनोलाइन से भिन्न बनाया है। फ्रांस अपनी वर्तमान सीमाओं को निश्चित मानता है पर जरमनी नहीं। साथ ही दूसरी बात है यह कि जरमनी ने फ्रांस के आक्रमण से बचने के ख़याल से उतनी नहीं, जितनी फ्रांस पर स्वयं आक्रमण करने का ख़याल सामने रखकर अपनी क़िलेबंदी की रचना की है।

जरमनी अपनी किलेबंदी के आधार पर लम्बी रेंज (मार) की तोपों को रख मैजिनोलाइन की तोपों की प्रथम कतार को बेकार कर देना तथा उसका पीछे की लाइन से सम्बन्ध विच्छेद कर देना चाहता है। इसके लिये उसे भी अपनी लाइन पन्द्रह मील तक गहरी रखनी पड़ी है तथा सेना को अधिक से अधिक गतिशील रखने की आवश्यकता होती है। इस काम में अपनी हवाई सेना का भी उसे साथ-साथ उपयोग करना पड़ेगा। मैजिनोलाइन की तरह सोगफ्रीड लाइन में भी पक्की खाइयाँ तथा किलेबन्दियाँ अवश्य हैं पर केवल यही उसकी विशेषतायें नहीं है।

सीगफ्रीड लाइन के बनाने में विशेष ख़याल जवाबी हमले की नीति का रखा गया है। इसीलिये फ़ौज सिर्फ़ शत्रु की तोपों की मार के ही बाहर नहीं रखी जाती बल्कि उसके टैंकों की पहुँच के भी बाहर रखी जाती है। दुश्मन के हवाई हमलों से बचने की भी काफ़ी अच्छी व्यवस्था रहती है। इसीलिये ऐन सीमा पर बहुत कम फ़ौज रहती है। अधिकतर फ़ौज १५ मील पीछे रहती है। उसी स्थान पर जवाबी हमलों के डिवीजन और मोटराइज्ड, (मोटरारूढ़) बहुत तेज़ी से पहुँचने वाली सेना भी रहती है।

सीगफ्रीड लाइन में लगभग उसकी आधी गहराई तक आक्रमणकारियों को सिर्फ़ ऐसी बाहरी चौकियाँ ही मिलेंगी जिनमें आत्मरक्षा की काफ़ी शक्ति होगी। इन्हें आक्रमणकारी शत्रु ज्यों ज्यों पार करता है वैसे वैसे रोकनेवाली सेना की जवाबी हमला करने की शक्ति केन्द्रीभूत होती जाती है और आक्रमणकारियों के मुख्य मोर्चे पर पहुँचते ही उन्हें सगठित जवाबी हमले का सामना करना पड़ता है।

मैजिनो और सीगफ्रीड दोनों ही लाइनें आधुनिक मोर्चेबदी की कला में चरम सीमा प्राप्त किये हुए हैं दोनों में कोई भी कमज़ोर नहीं है। इसीलिये लड़ाई छिड़े इतने महीने हो जाने पर भी कोई पक्ष अपने विरोधी की लाइन नहीं तोड़ पाया है। आज भी पश्चिमी मोर्चे पर की लड़ाई बाहरी चौकियों तक ही सीमित है।

मैजिनो-सीगफ्रीड-लाइनें

आधुनिक युद्ध की कला के बड़े से बड़े विशेषज्ञ इन लाइनों को तोड़ने के बहुत तरह के प्रयोग कर रहे हैं। पर कौन सा प्रयोग कैसे, कब और कितनी दूर तक सफल होगा यह स्वयं वे भी नहीं जानते। इन क़िलेबन्दियों और मोर्चेबन्दियों पर की इस भाँति की लड़ाई ने अब तक की प्रचलित युद्धविद्या को पुराना कर दिया है। इस सिलसिले में नये नये इल्म किस भाँति के निकलेंगे और उनमें कितनी हद तक धन और मानव शक्ति का बलिदान करने की आवश्यकता पड़ेगी यह अकेला भविष्य ही बतलावेगा।

इंग्लैंड की जलसेना के अड्डे
फ्रांस " " " "
जर्मनी " " " "
शेटलेण्ड द्वी०
ओर्कनी द्वी०
फेयर द्वी०
विक
एबर्डीन
डंडी
एडिनबरा
न्यूकासल
मिडिल्सबोरो
हल
लिवरपूल
हेलिगोलैंड
हाम्बुर्ग
बर्लिन

उत्तरी सागर का युद्ध

पिछले साल सितम्बर के महीने में लड़ाई के छिड़ते ही उसका सब से बड़ा स्थल उत्तरी-सागर बन गया। पश्चिमी मोर्चों की लड़ाई तो कभी कभी सप्ताहों धीमी पड़ी रहती है पर उत्तरी-सागर की लड़ाई इतने महीनों के बाद भी एक दिन के लिये धीमी नहीं पड़ी। आगे भी इस स्थल के इसी प्रकार महत्व पूर्ण बने रहने की संम्भावना दीखती है।

उत्तरी-सागर के इतना अधिक महत्व रखने के कई कारण हैं। वर्तमान लड़ाई में घेरों का महत्व बहुत अधिक है। इंगलैंड और फ्रांस जरमनी पर घेरा लगा कर उसे हार मानने के लिये बाध्य करना चाहते हैं। इस घेरे से वे आशा रखते हैं कि जरमनी के पास भोजन, कच्चा माल, और लड़ाई का सामान बाहरी देशों से नहीं पहुँच पायेगा और तब मजबूर होकर उसे पीछे हटना पड़ेगा। इस प्रकार का घेरा उत्तरी सागर से निकल कर अटलाण्टिक सागर में प्रवेश

करने के रास्तों पर जकड़ कर लगाने की चेष्टा की गयी है। दूसरी ओर जरमनी भी इस प्रकार का घेरा इंगलैंड पर लगाना चाहता है जिसमें वहाँ खाद्यपदार्थों की कमी पड़ जाय। इस घेरे से तटस्थ देश भी बचे नहीं हैं क्योंकि जरमनी नहीं चाहता कि उनका किसी प्रकार का भी व्यापारिक सम्बन्ध इंगलैंड के साथ रहे। अंगरेज़ भी इस कोशिश में हैं कि तटस्थ देशों से होकर कोई माल जरमनी के पास न पहुँचने पाये।

ऐसा व्यापारिक प्रतिबन्ध सिर्फ़ लोहा या गोला बारूद जैसी चीज़ों पर ही नहीं बल्कि खाद्यपदार्थ और विशेष कर चर्बी पर है। एक पक्ष दूसरे पक्ष के घेरे से स्वयं बचना चाहता है और दूसरे को अपने घेरे में जकड़ना चाहता है। इसी के परिणाम स्वरूप हवाई और जल युद्ध इतना अधिक महत्व पा रहे हैं।

पिछले महासमर के समय जरमनी ने देख लिया था कि काफ़ी मज़बूत जलसेना रखते हुए भी वह इंगलैंड पर घेरा डालने में समर्थ नहीं हुआ। इंगलैंड की भौगोलिक स्थिति इस भाँति की है कि स्कौटलैंड के उत्तरी छोर पर स्कापाफ़्लो, ओर्कनी और शेटलैंड द्वीप समूह में अपना मुख्य समुद्री अड्डा बना लेना उसके लिए सबसे अधिक लाभदायक साबित हुआ है। इन अड्डों से बिना अधिक हिले डुले वह जरमनी की समुद्री शक्ति को उत्तर सागर में क़ैद करके रख दे सकता है। शैटलैण्ड द्वीप और नार्वे तट के बीच का फ़ासला बहुत

कम है और वहाँ के अंगरेज़ी समुद्री अड्डे जरमनी के जहाजों को बड़ी आसानी से अटलांटिक में जाने से रोके रह सकते हैं। इंगिलिश चैनल की तरफ़ का रास्ता इंगलैन्ड और फ्रांस की सम्पूर्ण शक्ति के स्थान पर एकत्र हो जाने के कारण तथा रास्ता बहुत संकीर्ण रहने के कारण जरमन जहाजों को वहाँ से रोक रखना और भी आसान हो जाता है।

समुद्री शक्ति के विशेषज्ञ जरमन नेता महायुद्ध के बाद से ही इन समस्याओं का भलीभाँति प्रतिकार कर सकने की तैयारी करते आये हैं। उन्होंने पनडुब्बे जहाज़ों के सिवा खास तरह के छापा मारने के काम में आने वाले कुछ जहाज़ बनाये हैं। वर्तमान लड़ाई के आरम्भ में उनके पास इस तरह के तीन दस-दस हजार टन के डौयट्श लॉएड श्रेणी के जहाज़ थे। इनमें एक अभी कुछ सप्ताह पहले दक्षिणी अमेरिका में प्लेट नदी के मुहाने पर नष्ट हुआ। दो अभी बाक़ी हैं। इन पर ग्यारह इञ्च वाली तोपें रखी जाती हैं। अंगरेज़ों के पास कुछ समय पहले तक सिर्फ़ तीन वैसे जहाज़ थे (हूड, रिनाउन और रिपल्स) जो उनसे समुचित ढग से लड़ सकते थे। इनके सिवा दो और गहरा छापा मार सकने वाले जहाज़ शार्नहोर्स्ट और ग्नाइज़ेनाऊ (२५,००० टन के प्रत्येक) जरमनी के पास हैं। जरमनी एक सब से बड़ा जहाज ३५,००० टन का छापा मारने के मक़सद से तैयार करने में लगा है जिसमें थोड़ा काम और बाक़ी बचा है।

इनके सिवा वर्तमान लड़ाई के आरंभ में जरमनी के पास लगभग ७१ पनडुब्बे जहाज़ थे। पर तब से और जंगी जहाज़ तथा पनडुब्बियाँ बनाने का काम रात दिन चल रहा है। लड़ाई शुरू होने के बाद से सभी देशों में जहाज़ और युद्ध के दूसरे साधनों का निर्माण इतनी तेज़ी से और इतनी गुप्त रीति से चल रहा है कि इस सम्बन्ध में विश्वस्त अंको का मिलना इस समय असम्भव है। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि ब्रिटेन और फ्रांस की समुद्री शक्ति जरमनी से कहीं अधिक है।

पर अपनी उस छोटी-सी समुद्री शक्ति का अच्छे से अच्छा उपयोग करने तथा उससे अधिक से अधिक काम निकालने के लिये जरमनी ने अपने अधिकांश पनडुब्बे तथा दूसरे ढंग के जहाज़ वर्तमान लड़ाई के छिड़ने के पहले ही उत्तरी सागर के बाहर निकाल लिये थे। वे जहाज़ जिन देशों से ब्रिटेन और फ्रांस का सबसे अधिक व्यापार चलता है उनका रास्ता रोकने की चेष्टा लड़ाई छिड़ते ही करने लगे। अब भी वे वैसे ही काम में लगे हैं। हर सप्ताह शत्रु पक्ष के तथा तटस्थ देशों के कुछ न कुछ जहाज अब तक वे नष्ट करते ही जा रहे हैं।

ब्रिटेन और फ्रांस अपने समुद्री व्यापार के रास्तों की रक्षा में अपनी समुद्री शक्ति का उपयोग कर रहे हैं। उत्तर सागर से होकर माल से लदे जहाज़ों को निकालने के लिये उन्हें उन जहाज़ों के

साथ अपने लड़ाकू जहाज भी भेजने पड़ रहे हैं। पर सिर्फ़ जंगी जहाज़ों से ही पूरा काम न निकल सकने के कारण वे हवाई शक्ति का भी उपयोग करते हैं।

हवाई फ़ौजों की लड़ाई भी इस समय अधिकतर उत्तर सागर में ही चल रही है। जरमनी की बार बार कोशिशें उत्तर सागर तट पर के इंगलैंड के शिल्प प्रधान शहर तथा विशेष कर समुद्री अड्डों पर हवाई हमले करने की हो रही हैं। अंग्रेज वायुयानिक भी इसी भाँति उत्तर सागर तट पर के जरमन समुद्री अड्डों पर धावा कर रहे हैं। इन हमलों द्वारा अब तक किसी भी पक्ष को कोई विशेष मार्के की सफलता नहीं मिली है। उत्तर सागर अब भी जहाज़ डुबाए जाने वाले जरमन चुम्बक माइनों से खाली नहीं हैं। ये माइन पानी के नीचे पड़े रहते हैं, और जब कोई जहाज इनके निकट से गुजरता है तो उसमें खिंचकर आघात करते हैं। इनसे आघात पाया कोई जहाज़ अभी तक बच नहीं पाया है। पर वैज्ञानिक लोग इन माइनों से रक्षा के उपाय खोज रहे हैं। व्यापार के रास्ते यहाँ पर बहुत अंशों में बंद से ही हैं।

युद्ध के कुछ विशेषज्ञों का ऐसा अनुमान है कि मैजिनो और सीगफ्रीड मोर्चों की अपेक्षा उत्तर सागर की लड़ाई निकट भविष्य में अधिक जोरों की चलेगी।

अ ट ला न्टि क सा ग र
सो वि य त
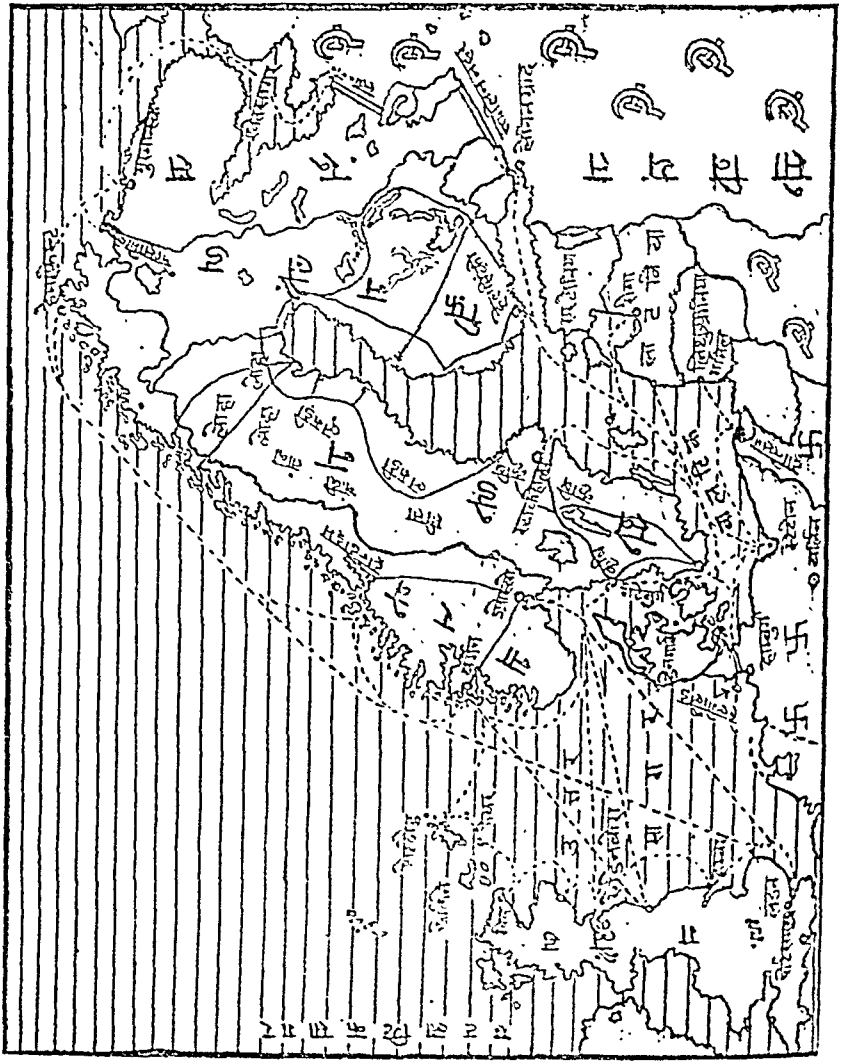
स्कैंडिनेविया

जरमनी के ऊपर ब्रिटिश घेरे का अधिक प्रभाव न पड़ने का कारण बहुत हद तक उसे स्कैंडिनेविया के देशों से मिलने वाली मदद है। वाल्टिक सागर तट का कोई भी देश वर्तमान युद्ध में ब्रिटेन की ओर से नहीं लड़ रहा है। इसलिये स्कैंडिनेविया से चलने वाले जरमनी के व्यापार को अब तक कोई धक्का नहीं पहुँचा है।

जरमनी की लड़ाई की ज़रूरियात में एक ख़ास चीज़ लोहा है। सिर्फ़ उत्तरी स्वेडेन से कम से कम पचास लाख टन लोहा सालाना उसके पास पहुँचता रहा है, और अन्दाज़ से कहा जा सकता है कि इस समय भी कम से कम इसी परिमाण में उसके पास पहुँच रहा है। मोटे तौर पर हिसाब लगा कर देखा जाय तो इतना लोहा ढोने के लिये लगभग चार हजार टन वाले जहाज़ को १२५० धेरे लगाने पड़ते होंगे। जहाज़ों का यह जाना आना अब भी बाल्टिक सागर में बेखटके चल रहा है।

स्वेडेन से जरमनी आने वाले लोहे का परिमाण पिछले कई वर्षों में बढ़ता ही गया है। १९३८ में तो यह लगभग ९० लाख टन तक पहुँच गया था। नार्वे से भी दो ढाई लाख टन लोहा उसे प्राप्त होता है। इस प्रकार सिर्फ़ स्कैंडिनेविया से ही जरमनी की लोहे की आधी ज़रूरतें पूरी हो जाती हैं। लोहे के सिवा और भी बहुत सा कच्चा माल जरमनी को इस लड़ाई के जमाने में भी स्कैंडिनविया से बराबर प्राप्त हो रहा है।

लड़ाई के सिलसिले में इतना अधिक महत्व रखने के कारण इस समय ब्रिटेन की भी दृष्टि स्कैंडिनेविया की ओर लगी है। अख़-बारों में कभी उसके द्वारा नारवे की तटस्थता भंग करने और कभी आर्कटिक क्षेत्र में पेत्सामो के निकट उसके लड़ाकू जहाज़ों के पहुँचने के समाचार आ रहे हैं। सोवियत रूस के दबाव की मदद ले

स्कैंडिनेविया

जरमनी इस समय भी स्कैंडिया के देशों से अपना काम सुचारू रूप से निकालता जा रहा है।

स्कैंडिनेवियन देशों में सिर्फ़ डेनमार्क ही ऐसा रहा है जिसके साथ जरमनी के झगड़े की सम्भावना रहती चली आयी है। महासमर के बाद जरमनी का एक प्रदेश श्लेस्विग डेनमार्क को दे दिया गया था। जरमनी ने उसे वापस लेने की इच्छा तो बहुत बार प्रकट की पर उसके लिये अब तक अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं किया है। डेनमार्क से लगी अपनी सीमा पर जरमनी ने मोर्चे बन्दी की है। पर उस मोर्चे बन्दी का रुख सिर्फ़ दबा कर डेनमार्क को अपने विपरीत न जानो देने के इरादे से हुआ है अथवा उसका अंगरेज़ी समुद्री शक्ति के प्रतिकार करने में हाथ रहेगा अब तक स्पष्ट नहीं हो पाया है।

हेलसिंकी
लेनिनग्राद
एस्टोनिया
ला ट वि या
ज र म नी
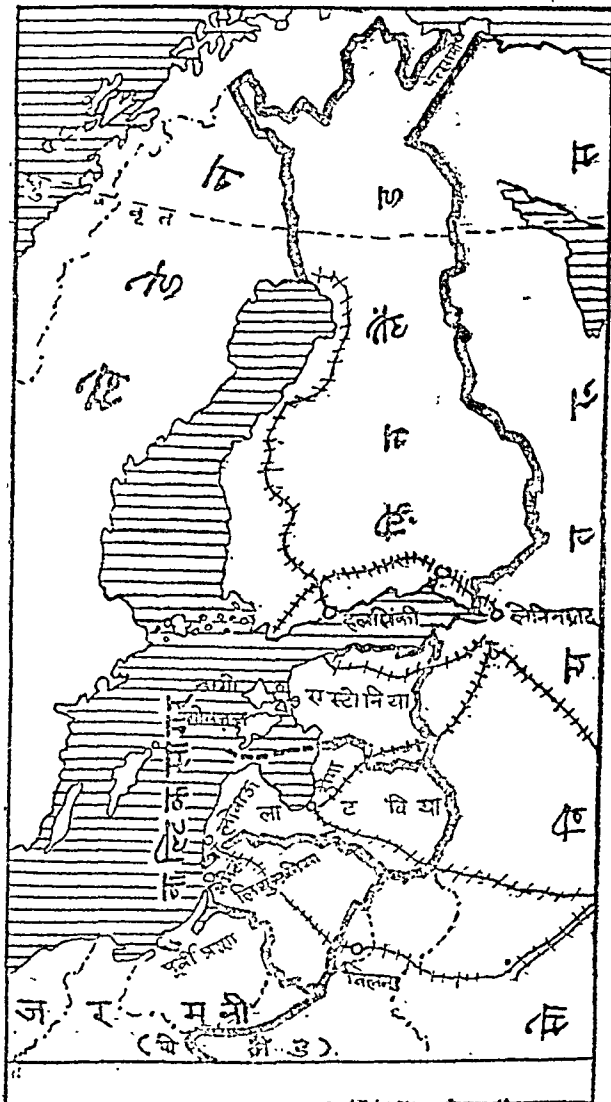
बाल्टिक देश

महासमर और क्रान्ति के बाद रूस के बाल्टिक तट पर के जो इलाके उससे अलग कर दिये गये थे उन्हीं से वहाँ के चारों देश—लिथुआनिया, लाटविया एस्थोनिया (एस्टोलिया) और फिनलैंड बने हैं। सन् १९१८ के आरम्भ में इन देशों पर जरमन लोगों का अधिकार था और सामरिक दृष्टि से महत्व रखने के कारण ये रूस से विमुख कर लिये गये थे।

जरमनी की हार हो जाने पर ब्रिटेन और फ्रांस ने बाल्टिक के देशों को रूस से अलग ही स्वतन्त्र राष्ट्र बनाये रखा। इस समय उसके अलग रखने का कारण इन देशों को बोल्शेविज़्म के झोंके से बचाये रखना था। रूस के लिये इन देशों का महत्व नक्शे पर एक दृष्टि डालते ही स्पष्ट हो जाता है। इन देशों में एस्थोनिया की राजधानी रेवाल (टैलिन) और लाटविया की राजधानी रीगा और भी अधिक महत्व के हैं। पश्चिमी रूस के माल के आयात निर्यात के लिये ये दोनों ही बन्दरगाह बड़े ही मार्के के हैं।

बालटिक के देशों में सांस्कृतिक तथा अन्य तरह के जरमन प्रभाव भी कम नहीं थे। अभी पिछले साल अक्तूबर के महीने तक वहाँ जरमन लोगों की आबादी ११५००० के लगभग थी। इनमें अधिकतर मध्यम और उच्च श्रेणी के जरमन थे। १९३३ के आरम्भ में हिटलर का प्रभुत्व जरमनी में जम जाने के बाद बाल्टिक देशों में बहुत ज़ोर शोर से नात्सी प्रचार चलने लगा। जरमनी की भावनायें ज्यों-ज्यों अधिक रूस-विरोधी होती जाती थीं त्यों-त्यों इन देशों का महत्व बढ़ता जाता था। रूस पर हमला करने के लिये जरमनी का एक अत्यन्त सुविधाजनक रास्ता इन्हीं देशों से होकर था। उस हालत में जरमन जेनरलों के प्लान के हिसाब से जरमन लड़ाकू जहाज़ बाल्टिक सागर से लेनिनग्राद की ओर बढ़ते और

पैदल सेना बाल्टिक देशों से होती हुई और समुद्री शक्ति को मदद पहुँचाती हुई उसी दिशा में आगे बढ़ती।

सोवियत रूस भी जरमन जेनरलों के इस प्लान से परिचित था। वह अच्छी तरह जानता था कि यदि जरमनी के साथ उसकी लड़ाई छिड़ी तो उसमें बाल्टिक के देश बहुत अधिक महत्व का स्थान लेंगे। इसीलिये उसका इन देशों की ओर विशेष ध्यान था। पिछले सितम्बर में पश्चिम यूरोप की लड़ाई ने इन देशों में अपनी जड़ मजबूत जमा लेने का उसे मौक़ा दिया। इन्हीं दिनों रूस का जरमनी के साथ एक दूसरे पर आक्रमण न करने का जो समझौता हुआ उसके अनुसार जरमनी को अपना 'बाल्टिक प्लान' छोड़ देना पड़ा। यदि इस मौके पर भी ब्रिटेन-फ्रांस जरमनी से किसी प्रकार का समझौता हो जाता तो जरमनी रूस को कदापि बालटिक में नहीं जमने देता।

पर जरमनी को ब्रिटेन-फ्रांस के विरुद्ध लड़ाई में कूदना ही पड़ा। सोवियत रूस ने इस मौके का बिना एक क्षण खोये पूरा फ़ायदा उठाया। एक तरफ़ उसकी सेना पोलैण्ड पर आधिपत्य जमाने लगी और दूसरी ओर उसी समय उसने बालटिक देशों से राजनीतिक समझौता किया। सबसे पहले एस्थोनिया के परराष्ट्र सचिव मास्को बुलाये गये। उनके साथ जो समझौता हुआ उसके अनुसार इस देश में अपनी पर्याप्त सेना रखने तथा समुद्री तथा हवाई अड्डे

बनाने का अधिकार सोवियत को मिला। हिउमा (डागो) और सारेमा (ओएज़ेल) के द्वीप पूर्वी बाल्टिक में बहुत अधिक महत्त्व के थे उन पर अपना समुद्री अड्डा जमाने के लिए सोवियत ने उन्हें ले लिया।

दूसरा नम्बर लाटविया का था। इस देश में भी सोवियत को सेना रखने का अधिकार मिला। यहाँ के मार्के के बन्दरगाहों में उसे लड़ाकू जहाज़ रखने तथा महत्त्व के स्थानों पर हवाई अड्डे बनाने का अधिकार सोवियत को मिला। लीबाऊ के मिल जाने से सोवियत को मध्य बालटिक में बड़ा ही सुन्दर अड्डे का स्थान मिल गया।

पूर्वी पोलैंड पर पूरा अधिकार जमा लेने के बाद सोवियत ने लिथुआनिया को उसकी पुरानी राजधानी विलना दे दी। पर इस देश में भी सेना रखने का सोवियत ने अधिकार लिया। यह अधिकार मिल जाने से जरमनी के पूर्व प्रशा की सीमा पर भी सोवियत की मोर्चे बन्दी का होना सम्भव हो गया।

एस्थोनिया, लाटविया, लिथुआनिया के साथ सोवियत की इन सन्धियों का नाम 'परस्पर-सहयोग' दिया गया है। इस सहयोग के कारण उत्तरी बाल्टिक जो अब तक 'जरमनी की झील' रहता आया था अब 'रूसी-झील' बन गया। यहाँ पर मोर्चे-बन्दी कर लेने के बाद सोवियत बहुत दूर तक जरमनी तथा अन्य यूरोपीय आक्रमण-

कारियों से निश्चिंत हो गया है। इंगलैंड और फ्रांस ने अगर पोलैंड को फिर से अलग करने की चेष्टा की तो सोवियत इन बाल्टिक देशों के मोर्चों से उसका अच्छी तरह प्रतिकार कर सकता है।

जरमनी के साथ भविष्य में कोई झगड़ा न खड़ा हो इसकी व्यवस्था अभी से बाल्टिक देशों में कर दी गई है। लिथुआनुया से मिले मेमेल के बंदर की मोर्चेबंदी जरमनी ने तोड़ दी। सोवियत-जरमन समझौते के अनुसार बाल्टिक देशों में बसने वाले ११५,००० जरमन वहाँ से हटाकर जरमनी भेज दिये गये हैं। अब भविष्य में जरमन-अल्प-समुदाय की रक्षा का बहाना कर सोवियत प्रभुत्व में आये हुए बाल्टिक देशों पर हमला करने का मौका जरमनी के हाथ से हमेशा के लिये जाता रहा।
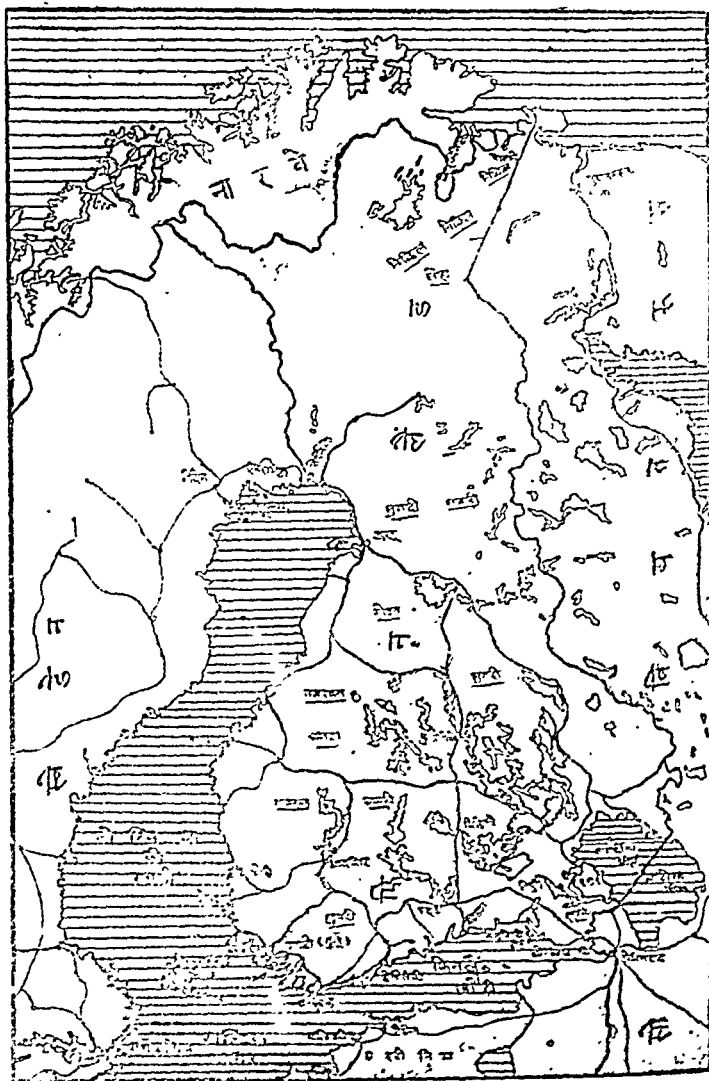
फ़िनलैंड

बाल्टिक सागर के एक ही किनारे पाँव जमा लेने से सोवियत इस क्षेत्र में बिलकुल निश्चित नहीं हो सकता था। पूर्वी बाल्टिक में एकाधिपत्य जमाने के लिये उसे बाल्टिक के फिनलैण्ड तट पर भी क़िलेबन्दी करने की आवश्यकता महसूस हुई। लिथुआनिया, लाटविया और एस्थोनिया की ओर से निबटते ही उसका ध्यान फिनलैण्ड की ओर गया। उसे सन्देह हुआ कि फिनलैंड को आधार बनाकर

कोई बड़ी शक्ति उसके ऊपर आक्रमण कर सकती है। उसने बात-चीत करने के लिये फिनलैण्ड के प्रतिनिधियों को अपने यहाँ आमन्त्रित किया।

बातचीत काफ़ी अर्से तक चलती रही रूस ने फिनलैण्ड से माँग पेश की कि सोवियत-फिनलैण्ड सरहद पर की किलेबन्दियाँ फिनलैण्ड तोड़ दे, फिनिश खाड़ी के कुछ टापुओं का विनिमय कर ले, लेनिनग्राद के उत्तर की सरहद कुछ दर्जन मील पीछे हटा ले और उसे फिनलैंड की खाड़ी के प्रवेश के पास अपने इलाकों का कुछ हिस्सा दे दे जहाँ रूस अपना समुद्री अड्डा बना सके। रूस अपने प्रमुख शहर लेनिनग्राद की हिफ़ाज़त के लिये फ़िनलैण्ड से समुद्री अड्डा बनाने के लिये हाँको का बन्दर भी चाहता था। फिनलैंड ने इन शर्तों को मानने से इनकार किया।

इन दिनों सोवियत पत्रों का ऐसा ख़याल था कि ब्रिटेन ही फिनलैण्ड को उसकी शर्तें न मानने के लिये बाध्य कर रहा है। फिनलैण्ड की आड़ में ब्रिटेन ही सोवियत को लड़ता दिखाई दिया। सोवियत को यह दिखाई दिया कि सिर्फ़ फिनलैंड ही ऐसा देश है जिसे आधार बनाकर सोवियत के शत्रु उस पर हवाई हमले कर सकते हैं। फिनलैण्ड की सीमा से बीस ही मील पर सोवियत का प्रमुख शहर लेनिनग्राद है जिस पर हवाई हमले का सारे सोवियत संघ पर गहरा असर हो सकता है।

वास्तव में फिनलैंड ने अपनी छोटी हवाई शक्ति के अनुपात में कहीं ज्यादा हवाई अड्डे बनवाये थे। सोवियत सीमा पर और भी नये नये हवाई अड्डे बनते ही जा रहे थे। फिनलैंड का रुख़ भी बहुत पहले से ही सोवियत विरोधी रहता चला आ रहा था। इन बातों से सोवियत का सन्देह और भी अधिक बढ़ गया।

जब सोवियत फिनलैण्ड की बातचीत का कोई नतीजा नहीं निकला। तब इन दोनों की सीमाओं पर दुतरफ़ा उत्पात मचने की खबरें आने लगीं। एक दो सप्ताह बाद ही सोवियत ने फिनलैंड पर बाज़ाप्ता हमला कर दिया और पहले ही चन्द दिनों में लेनिनग्राद के पास के कई टापू और इलाक़े तथा आर्कटिक की तरफ़ का पेत्सामो बन्दर तथा उसके आस-पास के इलाक़ों पर कब्ज़ा कर लिया। इस बीच उत्तरी देशों की भयानक सर्दी भी आरम्भ हो गई। फिनलैंड में प्रवेश करने के लिए रास्तों का बनाना भी एक ख़ास काम था। साथ ही फिनलैण्ड भी अपनी सारी शक्ति लगाकर सोवियत के बढाव को रोकता रहा। उसे अमेरिका, इटली ब्रिटेन फ्रांस जैसी विदेशी शक्तियों से भी काफ़ी मदद मिली। पर सोवियत की शक्ति के सामने अधिक दिनों तक लड़ाई के मैदान में टिकपाना उसके लिए कठिन साबित हुआ। अब तक के समाचारों से यही पता चलता है कि मार्के के प्रायः सभी स्थानों पर रूस का कब्ज़ा हो गया है। सोवियत अब पूर्वी बाल्टिक में एकाधिकार रखने का दावा कर सकता है।

अब फिनलैण्डका मामला लेकर ब्रिटेन और रूस के बीच वैमनस्य बढ़ता दिखाई दे रहा है। यदि उत्तर में इन दो शक्तियों की कभी लड़ाई हुई तो उसका क्षेत्र अब नौरवे ही बनेगा। फिनलैंड के उत्तरी हिस्से सोवियत में मिला लिये जाने के कारण अब नारवे और सोवियत की सीमायें मिल गयी हैं। यदि ब्रिटेन के साथ कभी सोवियत की लड़ाई की सम्भावना दृढ़ हुई तो उस हालत में सोवियत का सबसे पहला काम नारवे तट के बरफ़ रहित बन्दर गाहों पर कब्ज़ा करना रहेगा। यदि जरमनी ने सोवियत की इस नीति का विरोध किया तो जरमनी को मनाने के लिये सौदे में डेन्मार्क में स्वतंत्र हाथ मिल जाने की सुविधा मिल जा सकती है।

फिनलैंड की समस्या का बड़े राष्ट्रों की इस भविष्य की लड़ाई से सम्बन्ध है इसीलिये आज उसकी ओर सारे संसार की आँखें विशेषरूप से जा रही हैं। फ्रांस के एक प्रसिद्ध फ़ौजी विशेषज्ञ जेनरल डूवाल का यह ख़याल है कि यदि बिटेन-फ्रांस चाहें तो फिनलैण्ड को रूसी लोगों के कब्ज़े में जाने से अब भी बचा सकते हैं। फ़िनलैण्ड के पास अभी युद्ध सामग्री भेजने की जो दिक़्क़तें सामने हैं वे भी दूर की जा सकती हैं। इस काम के लिये, नारवे और स्वेडेन की तटस्थता भंग कर जरमनी को इधर के मैदान में कूदने के लिये आह्वान करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। अभी जो पेत्सामो का बन्दर रूसी लोगों के हाथ में है उसे आसानी से उनके अधिकार से

छीन लिया जा सकता है। जेनरल डूवाल के क़यास के अनुसार ब्रिटेन-फ्रांस की सम्मिलित समुद्री-शक्ति के सामने रूस की समुद्री-शक्ति अधिक देर नहीं टिक सकती।

अभी कुछ दिन पहले जो समाचार फिनलैंड से आते थे उनसे पता चलता था कि रूसी सेना फिनलैण्ड के गरदन जैसी शक्ल के स्थान पर ज़ोरों का आक्रमण कर रही थी और उसका लक्ष्य बोथ्निया की खड़ी तक पहुँचना था। यदि रूसी सेना को इसमें सफलता मिल गयी होती तो उसने फिनलैण्ड के दो टुकड़े कर दिये होते और स्वेडेन से उसका स्थल-सम्बन्ध बन्द कर दिया होता। अब भी इस क्षेत्र में लड़ाई चलने के समाचार आ रहे हैं। पर यदि ब्रिटेन-फ्रांस की समुद्री शक्ति ने उत्तर की ओर से पेत्सामो पर हमला किया तो रूसी सरहद से बोथ्निया की खाड़ी के निकट तक रास्ते पर की लड़ाई रूसी सेना को ढीली कर देनी पड़ेगी। उस हालत में वर्तमान रूसी-फिनिश युद्ध का सारा सिलसिला ही बदल जायगा।

अभी पिछले कुछ महीनों में सोवियत ने पूर्वी बाल्टिक क्षेत्र में जिस भाँति की पक्की मोर्चेबंदीकर ली है उससे उसका लेनिनग्राद के क्षेत्र का दुर्ग बहुत अंश में अभेद्य बन गया है। सोवियत रूस अपनी सारी शक्ति अब सिर्फ उत्तर में ही लगा सकता है। उसके बहुत से हवाई अड्डे अभी से आर्कटिक क्षेत्र तक तैयार हैं। जहाँ तक सोवियत रूस के सामने उत्तर की ओर से ब्रिटेन-फ्रांस की

समुद्री सेना के आक्रमण का प्रश्न है, उसने अपने बचाव की काफ़ी व्यवस्था कर ली मालूम होती है। उसकी श्वेतसागर से लेकर फिनलैण्ड की सीमा पर के कारेलिया तक की मोर्चेबन्दी ख़ासी पुख़्ता है। सर्वप्रथम वह मुर्मान्स्क के पास पोलारनोय में स्थित अपने समुद्री अड्डे का व्यवहार करेगा। यहाँ यदि उसे आवश्यकता हुई तो बाल्टिक स्थित अपने पनडुब्बे तथा अन्य प्रकार के जहाज़ स्टैलिन-कैनाल द्वारा श्वेतसागर तक ले आ सकता है।

यदि लड़ाई के अर्से में सोवियत की यह समुद्री शक्ति कमज़ोर पड़ी तो वह पेत्रोजावोद्स्क—रेपोला और नेदवोइस्क-उहतुआ के बीच की फ़ौजी-दृष्टि से उपयोगी रेलवे लाइन पर अपनी उत्तर की सारी फौज़ी ताकत केन्द्रीभूत कर ले सकता है। यह उत्तर की लड़ाई जितनी शीघ्र समाप्त होने का अभी फ्रांस के डूवाल जैसे फ़ौजी विशेषज्ञ क़यास कर रहे हैं, उतनी शीघ्र समाप्त नहीं हो सकेगी।

पर उत्तर की ओर छिड़नेवाली इस लड़ाई को बन्द करने में जरमनी का हित है। वह नहीं चाहता कि सोवियत की शक्ति और किसी तरफ़ के मोर्चे पर ख़र्च हो क्योंकि उस हालत में उसे सोवियत से मिलनेवाली मदद कम हो जाती है। इसीलिये जरमनी ने स्वेडेन के ऊपर दवाव डालकर फिनलैण्ड को सोवियत रूस से सीधे समझौते की बात करने के लिये बाध्य कराया है।

यदि फ़िनलैण्ड और सोवियत के बीच इस समय समझौता

हो गया तो सोवियत के हाथ फिनलैण्ड के फ़ौजी दृष्टि से उपयोगी प्रायः सब स्थान आ जायेंगे। फौजी दृष्टि से फिनलैण्ड का महत्व बहुत कम हो जायगा। बहुत अंश में वह सोवियत के ही ऊपर आश्रित रह जायेगा। उसकी हालत म्यूनिख़ के समझौते के बाद के ज़ेकोस्लोवाकिया से भी बदतर हो जा सकती है।

पर यदि फिनिश-रूसी समझौता इस समय नहीं हो सका तो पहले की अपेक्षा कहीं अधिक परिमाण में ब्रिटेन-फ्रांस की संयुक्त समुद्री शक्ति के पेत्सामो की ओर से सोवियत सेना पर हमला कर बैठने की सम्भावना है। उस हालत में फिनिश-रूसी युद्ध का स्वरूप ब्रिटेन-फ्रांस की संयुक्त शक्ति के साथ सोवियत रूस की लड़ाई में परिणत हो जायगा। तब सिर्फ़ उत्तर के बरफ़ीले प्रदेश ही नहीं बल्कि एशिया के कई स्थान और भारत की पश्चिमोत्तर सीमा तक युद्ध स्थल बन जा सकते हैं। पर जहाँ तक फ़ौजी विशेषज्ञों का अनुमान है वैसी हालत में सबसे गहरी लड़ाई बालकान क्षेत्र और स्पष्ट कहा जाये तो तुर्की. और इराक़ की सीमा में चलेगी।

तेल
तेल
काला सागर
बलगारिया
सोफिया
इटली
तुर्की

बालकान प्रायद्वीप

पिछले सितम्बर के महीने में यूरोप की राजनीति का ज्योंही रुख बदला सारे बालकान प्रायद्वीप में खलबली मच गई। इस खलबली का ख़ास कारण इस समय रूस बन रहा है। रूस का सबसे पहला काम हुआ कि उसकी लाल सेना ने शीघ्रता पूर्वक आगे बढ़कर दक्षिण पोलैंड के रास्ते रूमानिया की ओर आगे बढ़ने का जर-

मनों का रास्ता रोक दिया। जरमनी और रूमानिया की सरहद कहीं पर भी नहीं मिलती इसलिये जरमनी यदि आक्रमण भी करना चाहे तो उसे हंगेरी के रास्ते करना पड़ेगा। पर इससे रूमानिया को कुछ चैन मिला हो वैसी बात नहीं है। उसके लिये फ़र्क सिर्फ यह हुआ है कि जरमनों के प्रभुत्व क्षेत्र से हटकर वह रूसी लोगों के प्रभुत्व क्षेत्र में आ गया है।

बहुत अंश में रूमानिया की बेचैनी बढ़ गई है। इस बढ़ने का कारण यह है कि वह सोवियत रूस का बेसाराबिया का प्रांत, हंगेरी का ट्रान्सिलवानिया और बुलगारिया का दुब्रूज़ा का इलाका दबाये बैठा है। इसीलिये इन तीनों देशों की दृष्टि इस समय स्वाभाविक ही रूमानिया के बँटवारे की ओर जा रही है। इस बात की इस समय बहुत अधिक संभावना है कि रूस बाकी दो देशों को १९१९ की सन्धि द्वारा उनसे छीनकर रूमानिया को दिये गये प्रदेशों को पुनः अपने अपने आधिपत्य में ले आने के लिए आमंत्रित करेगा। बुलगारिया ने इसका संकेत भी किया है कि सोवियत उसे दुब्रूज़ा का प्रदेश फिर से दिलायेगा।

यदि रूमानिया ने रूस का बेसाराबिया और बुलगारिया का दुब्रूज़ा प्रदेश लौटा दिया तो काला सागर से उसका बिल्कुल ही सम्बन्ध विच्छेद हो जायगा। इसके सिवा रूस की जिस ढंग से बाल्टिक के देशों के साथ परस्पर सहयोग की सन्धि हुई है उसी

ढंग की यदि बुलगारिया के साथ हुई तो सोवियत की बालकान में भी सैनिक और समुद्री शक्ति कहीं अधिक बढ़ जायगी। उस हालत में सोवियत का काले सागर के सारे पश्चिमी तट पर एकाधिपत्य हो जायगा। रूस की सीमा यूरोपीय तुर्की की सीमा से मिल जायगी। और यदि सोवियत ने और एक क़दम आगे जाने की हिम्मत की और ग्रीस से बुलगारिया को फिर से देदेआगाछ का इलाका दिये जाने के तक़ाजे की पुष्टि की तो उसे ईजियन सागर के इस बन्दरगाह के उपयोग करने की सुविधा मिल जा सकती है।

बालकान की ओर इस दृष्टि से देखने पर हाल में ऐंग्लो-फ्रेंच टर्की सहयोग का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। अब तुर्की को अपने यूरोपीय हिस्से में रूस सरहद पर दिखाई देने लगा है। काला सागर में भी अकेला वही एक प्रतिद्वंद्वी दिखाई देता है और साथ ही ब्रेस्टलिटोव्स्क की सन्धि द्वारा तुर्की को दिये गये कार्स और अर्दहान के इलाके लौटाये जाने की रूस की माँग ने तुर्की को बेचैन कर दिया है। इन सब बातों के सिवा रूस की तुर्की से सबसे बड़ी माँग यह है कि सोवियत के आवश्यकता पड़ने पर तुर्की ब्रिटेन और फ्रांस का डार्डनेलीज़ का रास्ता बन्द कर दे। ऐसा मौका भी रूमानिया का मामला लेकर शीघ्र ही आ उपस्थित हो सकता है। रूमानिया को ब्रिटेन और फ्रांस ने जरमन तथा सोवियत आक्रमण से बचाने का आश्वासन अवश्य दिया है, पर इसका ख़याल न कर

सोवियत रूमानिया से अपना इलाका वापस पाने के लिये शक्ति का प्रयोग भी कर सकता है।

बड़े राष्ट्रों के इस प्रकार के दावपेच तुर्की को बड़े ही पशोपेश में डाल रहे हैं। वह दोनो विरोधी पक्षों में से किसी के भी साथ लड़ना नहीं चाहता। इसीलिये एक ओर तो उसने ब्रिटेन-फ्रांस से सैनिक मेल कर लिया है और दूसरी ओर रूस से भी ऐसा समझौता कर लिया है जिससे पता चलता है कि इन दोनों देशों के बीच युद्ध नहीं छिड़ेगा और मित्रता बनी रहेगी।

पर बालकान में रूस की प्रगति पर प्रतिबन्ध लगा सकने वाला एक और बड़ा राष्ट्र-इटली हैं। इटली के लिये बालकान सिर्फ भोजन और कच्चे माल का क्षेत्र नहीं बल्कि सामरिक दृष्टि से भी बहुत महत्व रखने वाला है। उसे हमेशा डर रहता है कि कोई बड़ा राष्ट्र बालकान को आधार बनाकर कहीं उसके आड्रियाटिक तट की लाइन पर हमला करने के लिये उतारू न हो जाय। उस हालत में इटली का पूर्वी अफ्रिका के उपनिवेशों का रास्ता भी ख़तरे में आ जायेगा।

पिछले साल अलबानिया पर कब्ज़ा कर लेने के बाद से इटली अब ग्रीस, यूगोस्लाविया और डेडिकानीज़ द्वीप की ओर से टर्की पर हमला करने योग्य ताकत रखने लगा है। दो साल पहले इस बाल-कान के मामले में उसका जरमनी से भी उपयुक्त समझौता हो गया

था। उस समय सारा बालकान प्रायद्वीप इन दो राष्ट्रों के प्रभुत्वक्षेत्र के बीच बँट चुका था। पर अब जरमनी बालकान के परदे पर बहुत कुछ फीका पड़ चुका है और सोवियत रूस आगे आता जा रहा है इससे परिस्थिति बदलने लगी है। अब इटली को भय होने लगा है कि जरमनी के साथ समझौते के समय उसे इस प्रायद्वीप से जितने लाभ की आशा थी उतना लाभ रूस के आगे आ जाने से नहीं मिल सकेगा। इस लिये ख़याल किया जाता है कि सोवियत को पूर्वी भूमध्यसागर में अपना पाँव फैलाने से रोकने में वह टर्की की मदद करेगा। अब टर्की के ब्रिटिश-फ्रांस से पिछले अक्तूबर में सैनिक सहयोग हो जाने पर यह खयाल किया जाता है कि ब्रिटेन-फ्रांस के इशारे पर तुर्की पूर्वी भूमध्यसागर में रूस को रोककर इटली के हितों की रक्षा करेगा और बदले में इटली बालकान प्रायदीप में रूस की प्रगति रोककर तुर्की के हितों की रक्षा करेगा।

हाल में तुर्की ने अर्जरूम होकर ईरान से और देआरबेकिर होकर इराक से सीधा रेल का सम्बन्ध स्थापित किया है। ये दोनो लाइने मार्च १९४० के शुरू में पूरी हुई हैं।

इन लाइनों पर इस्तेमाल होने के लिए इंजिन और गाड़ियाँ इंगलैंड से आई हैं। युद्ध ने अगर इस क्षेत्र में प्रवेश किया तो इन लाइनों का महत्व पूर्ण उपयोग होगा।

वर्तमान परिस्थिति बालकान में इस प्रकार की है कि रूमानिया

के विरुद्ध रूस का आगे बढ़ना स्वयं कुछ बालकान के ही देश पसन्द करेंगे क्योंकि इसमें उनके अपने निजी स्वार्थ साधन होने की भी संम्भावना है। ऐसे राष्ट्रों में हंगेरी और बुलगारिया हैं। ये दोनों अब तक रूस विरोधी थे पर पिछले सितम्बर के बाद अब उनका उसी के प्रति मित्रता का रुख हो गया है। इटली तथा जरमनी से भयभीत रहने तथा रूस के ही समान स्लैविक संस्कृति रहने के कारण अब यूगोस्लाविया का भी रुख पलटा है और वह भी रूस की ओर मित्रता का रुख रखना चाहता है। ग्रीस इटली से डरता है पर उसे ब्रिटेन की मदद का बचन मिला हुआ है। टर्की किसी भी भाँति अपने को सोवियत के प्रभुत्वक्षेत्र में आने से बचाने की चेष्टा में है।

जहाँ तक बड़े राष्ट्रों के प्रभुत्व का प्रश्न है सोवियत प्रधानता पा रहा है। इटली के आर्थिक स्वार्थ से उसकी गहरी टक्कर नहीं। इसलिये वह भी अभी अपने मुख्य शत्रुओं का समुचित विरोध करने के लिये इटली का समर्थन तक कर सकता है। ब्रिटेन-फ्रांस का प्रभाव बालकान प्रायद्वीप में कम है। जरमन तथा रूसी प्रभुत्व से वे बालकान को बचाने में समर्थ नहीं हुए इसलिये वहाँ इनकी धाक इस समय बहुत ही कम है।

कुछ वर्ष पहले रुमानिया, ग्रीस और तुर्की ने जो अपना अलग बालकान दल कायम किया था वह इस समय कमज़ोर पड़ गया है।

ये राष्ट्र अभी स्वयं उतने मजबूत नहीं हैं कि वे बड़े राष्ट्रों की दखलन्दाज़ी की उपेक्षा करके अपनी अन्तर्राष्ट्रीय नीति स्वयं निर्धारित करसकें और अपनी रक्षा कर सकें। इसी लिये ये राष्ट्र अपने को तटस्थ रखने की भरपूर चेष्टा कर रहे हैं। पर यदि यूरोपीय युद्ध का दायरा बालकान तक आगे आया तो बड़े राष्ट्रों की उक्त दलबन्दियों के आधार पर बालकान में युद्ध चलने की सम्भावना है।
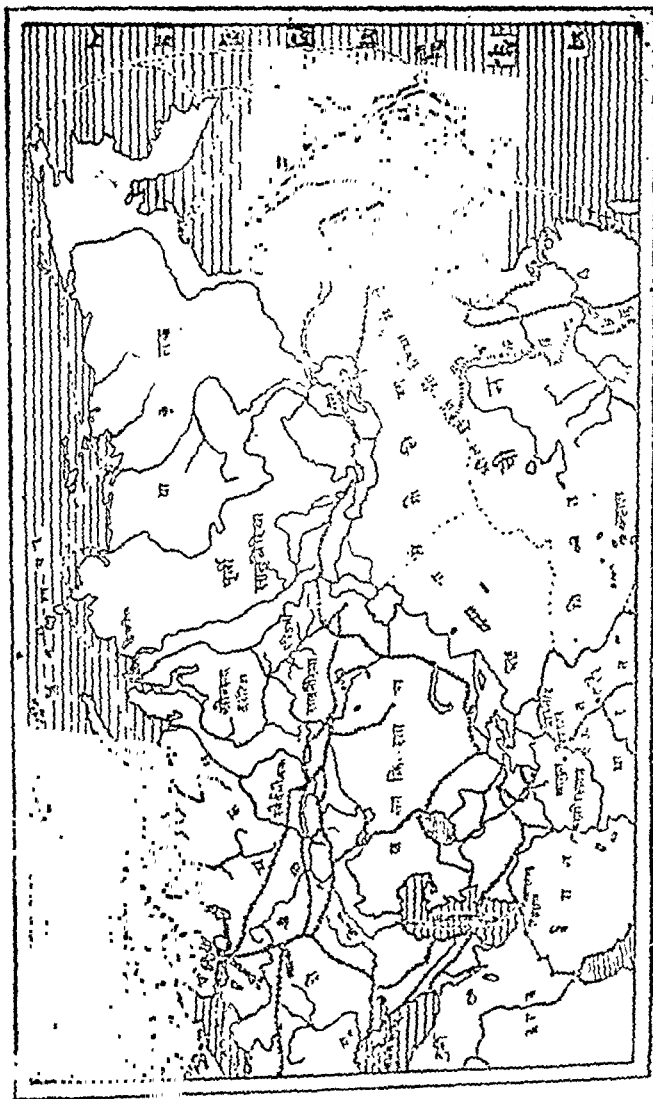
सोवियत रूस

युद्ध की आधुनिक नीति के अनुसार समुचित बचाव की व्यवस्था का ही दूसरा नाम सफल आक्रमण की तैयारी है। सोवियत ने इस नीति में ख़ासी दक्षता हासिल की है। दस वर्ष पहले वह पूँजी-पति राष्ट्रों से इस प्रकार घिरा हुआ था कि प्रतिपल उसे अपने दबा दिये जाने की आशंका बनी रहती थी। उनसे अपनी रक्षा करने की व्यवस्था उसने सन् १९३० में समुचित ढंग से आरम्भ की। आधु-निक ढंग पर खेती तथा खानिज पदार्थों की व्यवस्था तथा मिट्टी के तेल निकालने के अलावा उसने एक बड़ा काम यह किया कि अपने देश को कृषि प्रधान देश से उच्चकोटि के शिल्प प्रधान देश में बड़ी तेज रफ़्तार से परिणत कर लिया।

इस क्षेत्र में सोवियत रूस की जो धुन और रफ़्तार रही है वह सारे संसार को आश्चर्य में डाल देने वाली चीज़ है। पूँजीवादी राष्ट्रों ने भी अपने देश को शिल्प प्रधान बनाया है पर सोवियत रूस वाली रफ़्तार उनकी कल्पना में भी सम्भव नहीं थी।

देश के शिल्प प्रधान बनते ही रूस की सैनिक शक्ति बहुत प्रबल हो गयी। रूस को इस मामले में सब से बड़ी सुविधा यह थी कि किसी भी प्रकार के कच्चे माल के लिये उसे बाहर के किसी देश पर आश्रित रहने की आवश्यकता नहीं थी। लड़ाई के साधनों के लिये लोहा, कोयला, तेल और भोजन उसे प्रचुर मात्रा में प्राप्त था।

रूस की मौजूदा सैनिक शक्ति का अनुमान जिन विशेषज्ञों ने लगाया है उनका ख़याल है कि सिर्फ़ यूरोप ही नहीं बल्कि सारे संसार में सबसे बड़ी सैन्य शक्ति रूस की है। युद्ध के आधुनिक यंत्रों में हवाई जहाज़ और टैंक पहला स्थान लेते हैं। इन दोनो में रूस कितना आगे बढ़ा है इसका अनुमान सिर्फ़ इसी बात से लगाया जा सकता है कि पिछले साल युद्ध आरम्भ होने के पहले सारे यूरोप के राष्ट्रों के पास २५,००० हवाई जहाज़ थे जिनमें अकेले रूस के पास १२००० के लगभग थे। यूरोप भर में टैङ्कों की संख्या ३०००० थी जिसमें आधे से अधिक अकेले रूस के पास थे। इसके सिवा इन चीज़ों को तैयार करने की रूस की शक्ति भी अद्भुत है। वह यदि अपनी सारी शक्ति लगा दे तो २०,००० हवाई जहाज़ और लगभग इतनी ही तादाद में टैङ्क हर साल तैयार कर सकता है।

रूस के पास आदमियों की भी कमी नहीं। सब मिलाकर १ करोड़ २३ लाख आदमी उसके पास लड़ाई की तालीम पाये हुए

हैं, जिसमें से ५० लाख तुरन्त ही मैदान में उतार दिये जा सकते हैं। इनके अलावा सोवियत रूस साढ़े छः लाख नये आदमी हर साल मैदान में भेजता जा सकेगा।

इतनी अधिक ताक़त रखने के कारण रूस आज पूँजी-पति राष्ट्रों से सिर्फ़ अपनी रक्षा कर पाने ही में समर्थ नहीं है बल्कि वह उनके लिए बहुत अधिक भय का कारण बन गया है। पिछले साल सितम्बर के बाद से तो सिर्फ़ यूरोप ही नहीं बल्कि सारे संसार की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति बहुत कुछ सोवियत रूस के रुख़ के ऊपर निर्भर करने लगी है।

इस समय जैसा सोवियत रूस का रुख़ है उससे पता चलता है कि वह यूरोपीय युद्ध में सम्मिलित होना नहीं चाहता। पर पश्चिम की ओर आक्रमण से बचने के लिए वह इस समय हर तरह से अपनी पुख़्ता क़िलेबन्दी कर लेना चाहता है। वह आक्रमण या तो साम्यवादी व्यवस्था को नष्ट करने के लिए फासिस्ट और साम्राज्य-वादी शक्तियों द्वारा होगा, या जरमन साम्राज्य-प्रसार के सिलसिले में होगा।

अभी जो पूर्वी यूरोप का पुनः बँटवारा हुआ है उससे रूस के पूर्वी बाल्टिक में एकाधिकार शक्ति पाजाने तथा बाल्कान में दृढ़ता पूर्वक पाँव जमा सकने का मौक़ा मिल जाने के कारण सोवियत रूस के हाथ में यूरोपीय शक्ति का पलड़ा आ गया है। जरमनी तो

बहुत अंश में रूस की मुट्ठी में खेल रहा है। लड़ाई के लिए कच्चा माल जरमनी को सिर्फ रूस ही जुटा सकता है और वह भी वह तब तक जुटायेगा जब तक उसे लाभ होगा अथवा जब तक वह अपने भविष्य के लाभ का ख़याल कर इस लड़ाई को जारी रखना चाहेगा।

अब तक रूस जरमनी को पूरी तरह से मदद नहीं कर रहा है। इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला कारण तो यह है कि वह घटनाओं की प्रगति का रुख़ और कुछ दिन देखना चाहता है। जरमनी और ब्रिटेन-फ्रांस के बीच विरोध के बहुत गहरे कारण हैं और उन दोनों के मेल होने की क़तई संभावना नहीं दीखती, पर शायद सोवियत रूस पर आक्रमण करने के लिए १९२० की तरह सब पूँजीवादी राष्ट्र चन्द दिनों के लिए एक हो जायें इसकी आशंका जड़मूल से दूर नहीं हुई है। इस आशंका के दूर होने में अभी दो साल के लगभग लग सकते हैं।

दूसरा कारण आर्थिक और व्यवहारिक है। अभी जिस तरह के कच्चे माल की जरमनी को ज़रूरत है उसे भेजने के लिए सोवियत को अपने घरेलू ख़र्च की बढ़ती हुई मात्रा में से काटना पड़ेगा। पर यदि लड़ाई दो साल तक इसी भाँति मन्द गति से चली और ख़ूब जम कर युद्ध नहीं हुआ तो मोर्चों पर उतना अधिक लड़ाई का सामान ख़र्च नहीं होगा। इस बीच जरमनी के इंजिनियर और शिल्प विशेषज्ञों की मदद लेकर सोवियत अपने कच्चे माल की

उत्पत्ति उतनी अधिक बढ़ा ले सकता है कि घरेलू व्यवहार की वृद्धि में ज़रा भी कमी किये बग़ैर वह जरमनी को लड़ाई के लिये सब तरह का उपयोगी कच्चा माल उत्पत्ति की नई वृद्धि से ही दे सके। रूस की यह मदद पश्चिमी मोर्चे पर बहुत बड़े महत्व की साबित होगी।

इस बीच एक हालत में रूस जरमनी को अब की अपेक्षा और अधिक मात्रा में मदद कर सकता है। यदि ब्रिटेन-फ्रांस की इस समय पश्चिम में बड़े मार्के की जीत हुई और इसके बाद उन्होंने रूस के हाथ में आये नये इलाकों को फिर से बलपूर्वक लौटाने की चेष्टा की तो जरमनी और रूस बहुत दूर तक एक हो कर लड़ने लगेंगे। महासमर के बाद से ही ब्रिटेन-फ्रांस इस प्रकार जरमनी-रूस का मेल होना भरपूर चेष्टा कर रोकते आये हैं। पर इस बार यदि यह मेल पूरा-पूरा सम्भव हो गया तो रूस-जरमनी की सम्मिलित शक्ति कहीं अधिक बढ़ जायगी। जरमनी के कारीगर और रूस के कच्चे माल का विस्तृत क्षेत्र, इन दो देशों की शक्ति को इनके पड़ोसियों की सम्मिलित शक्ति से टक्कर लेने योग्य बना देगी। उस हालत में ख़याल यह होता है कि संसार की किसी भी शक्ति के लिये इन्हें परास्त करना कठिन हो जायगा।
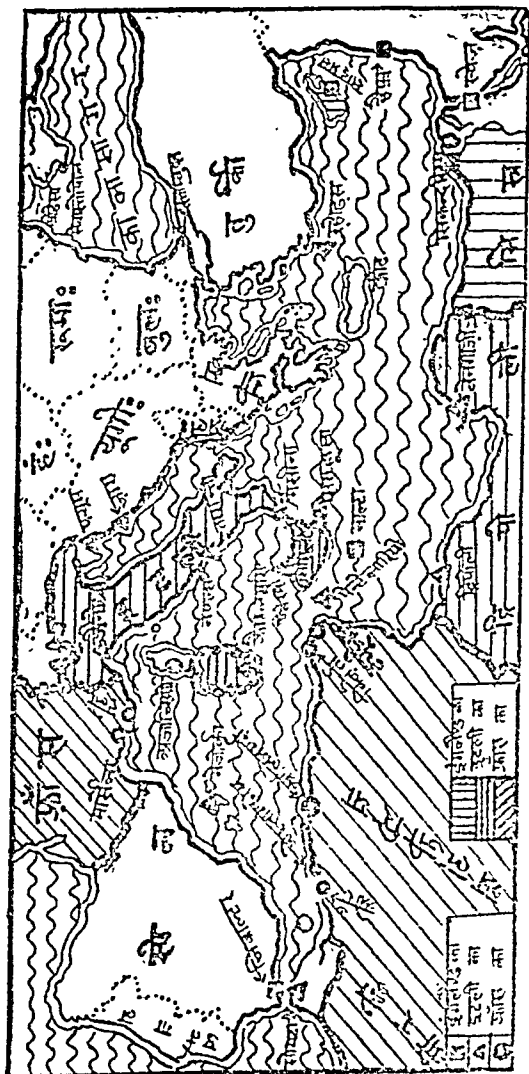
भूमध्यसागर

ब्रिटिश और फ्रांसीसी साम्राज्य की वास्तविक रीढ़ भूमध्य-सागर है। यही इन दो राष्ट्रों का उनके पूर्व के विशाल साम्राज्य की ओर जाने आने का सुविधा जनक रास्ता है। इस रास्ते पर का आघात इन दोनों राष्ट्रों के लिये बहुत बड़ा आघात साबित होता है। इसीलिये इन राष्ट्रों के विरोधी देश शांति के दिनों में इसी क्षेत्र में अपनी किलेबन्दी मज़बूत करने की कोशिश करते हैं जिससे लड़ाई के वक्त वे आसानी से इन दो महान शक्तियों को पंगु बना दे सकें।

इस क्षेत्र में ब्रिटेन-फ्रांस का सबसे बड़ा प्रतिद्वंद्वी इटली है। दो तीन साल पहले से ही इटालियन जेनरल खुलेआम ऐलान करने लगे हैं कि इटालियन हवाई तथा समुद्री शक्ति की परीक्षा भूमध्य-सागर में ही होगी। भूमध्यसागर में अपना प्रभुत्व कायम करना इटली का ख़ास उद्देश बन गया है।

पिछले दो तीन साल में इटली ने अपनी समुद्री शक्ति बढ़ाने की भरपूर कोशिश की है। उसने कई नये आधुनिक लड़ाकू जहाज़ बनवाये हैं, और अब लगभग १०० पनडुब्बे जहाज़ उसके पास हैं।

पर भूमध्यसागर में इटली को ब्रिटेन और फ्रांस की संयुक्त शक्ति का मुक़ाबिला करना पड़ेगा।

ब्रिटेन अपनी काफ़ी समुद्री शक्ति भूमध्य-सागर में केन्द्रित किये रहता है। फ्रांस की शक्ति साथ हो जाने से उसकी शक्ति और भी बढ़ जाती है, इस संयुक्त समुद्री शक्ति की तुलना में इटली की शक्ति बहुत कम है। पर फिर भी इटालियन समुद्री युद्ध के विशेषज्ञ यह आशा रखते हैं कि वे अपनी विशेष अनुकूल भौगोलिक स्थिति से अपनी हवाई सेना का समुचित उपयोग करने पर ब्रिटेन फ्रांस की संयुक्त शक्ति का सफलता पूर्वक मुक़ाबिला कर सकते हैं।

इटली अपनी समुद्री तथा हवाई शक्ति के संयोग से भूमध्य-सागर का पथ ब्रिटेन-फ्रांस के लिए तीन स्थानों पर बन्द करने की कोशिश कर सकता है। सबसे पहला सिसिली और ट्यूनिस के बीच का संकीर्ण दायरा है जिसमें इटली का मजबूत समुद्री अड्डा पेंटेलारियो बहुत ही मार्के का तथा उपयुक्त मोर्चा है। दूसरा ट्रिपोली और सिराकूसा के बीच और तीसरा डोडेकानीज़ द्वीप (रहोड्स) और लीबिया (बेनगाज़ी) के बीच होगा। इन स्थानों से शत्रुओं पर हमला करने की बात भी इटली सोचा करता है। सारडीनिया और इटली के बीच वाले टिरेनियन समुद्र को वह रसद का केन्द्र बनाना चाहता है। अड्रायाटिक सागर में बिना किसी शत्रु के हमले की आशंका किये वह अपने क्षत जहाज़ों की मरम्मत

कर सकता है। भूमध्य-सागर की लड़ाई का स्थल केन्द्र समूचा इटालिअन प्रायद्वीप बनेगा।

अब हम इटली के विपक्षियों के अड्डे लें। भूमध्य-सागर में प्रवेश करने का पश्चिम का फाटक जिब्राल्टर और पूर्व का दरवाज़ा स्वेज़ ब्रिटेन के हाथ में है। भूमध्य-सागर के पश्चिमी हिस्से के प्रमुख समुद्री अड्डे ओरां, मोस्तागानेम, आल्जियर्स, तूलों आदि फ्रेंच लोगों के हाथ में हैं। इसी का सामना करने के लिए इटली ने स्पेन से मेजोर्का द्वीप तथा सोयटा लिया है। पूर्वी भूमध्य-सागर के उपयुक्त समुद्री अड्डे साइप्रस, हैफ़ा और सिकन्दरिया भी ब्रिटेन के हाथ में हैं। मध्य भूमध्य-सागर में भी ब्रिटेन का माल्टा और फ्रांस का विजेर्ता और कार्सिका (अजात्तियो) जैसे अड्डे इटली के निकट हैं। इन अड्डों पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अभी इटली की शक्ति तथा उसकी किलेबन्दियाँ उसके अपने बचाव भर के लिए ही पर्याप्त हैं। वह अभी ब्रिटेन-फ्रांस की संयुक्त समुद्री शक्ति पर भूमध्य सागर में सफलता पूर्वक हमला कर सकने योग्य नहीं बना है।

मिट्टी का तेल
रूमानिया
काला सागर
कास्पियन सागर
बाकू
तबरीज़
तेहरान
सिवास
तुर्की
भूमध्य सागर
बगदाद
हदीथा
हैफ़ा
अरब

पश्चिमी एशिया में तेल की लड़ाई

युद्ध की आवश्यक सामग्री में सबसे पहला नम्बर तेल का ही आता है। हवा में उड़ने वाले विमान, लड़ाकू समुद्री जहाज तथा टैंक और मोटर-सेना सब में गति लानेवाला पेट्रोलियम ही होता है। पर यही वस्तु है जो अधिकांश महान शक्तियों के देश में नहीं मिलती। इसी लिये संसार के व्यापार में सबसे अधिक लड़ाई इसी

के लिये होती है। जरमनी, फ्रांस, इटली और जापान के महान राष्ट्र होते हुए भी या तो उनके पास पेट्रोल यातो बिलकुल ही नहीं या बहुत ही थोड़ा है। इन देशों ने कृत्रिम तरीकों से तेल बनाने की चेष्टा की है पर वह इनकी ज़रूरियात पूरी करने लायक मात्रा में नहीं तैयार हो पाता। युद्ध के समय तो इसकी इतनी अधिक आवश्यकता पड़ती है कि जब तक इसका अनवरत स्रोत न बहता रहे लड़ाई चल ही नहीं सकती। इसीलिये जिन स्थानों पर पेट्रोलियम पाया जाता है उन पर कब्ज़ा करने।के संघर्ष का स्वरूप पहले की ही तरह जटिल बना है।

पश्चिमी एशिया में ईरान और इराक़ में काफ़ी तेल पाया जाता है। ईरान के तेल का ब्रिटिश सरकार की पूँजी व्यवहार करने वाली एँग्लोपर्शियन आयल-कम्पनी के हाथ है। सन् १९३२ में ईरान की सरकार ने उस कम्पनी की बहुत-सी रियायतें छीन ली थीं जिनसे ईरान और ब्रिटेन के आपसी सम्बन्ध में तनातनी चलने लगी थी। एक साल बाद उन रिआयतों पर फिर से विचार किया गया था। कुछ परिवर्तन अवश्य हुए, पर फिर भी इंगलैण्ड जिस परिमाण में और जितना सस्ता ईरान का तेल पाना चाहता था वह सम्भव नहीं हुआ। मगर ब्रिटेन ईरान के ऊपर बहुत अधिक दबाव डालकर अथवा उसके विरुद्ध शक्ति काम में लाकर अपना काम नहीं निकाल सकता क्योंकि उस अवस्था में ईरान के

अपने पड़ोसी रूस के पंजे में चले जाने की सम्भावना रहती है। ईरान की वाह्यराजनीति में वहुत दिनों से ब्रिटेन और रूस ख़ास महत्व रखते आये हैं। महासमर के बाद इन दो महान राष्ट्रों के बीच आपस में विरोध रहने के कारण महासमर के पहले की तरह ईरान का बँटवारा कर लेना सम्भव नहीं हो सकता। पर इस समय जैसी सम्भावना है यदि रूस का विरोध बहुत अधिक बढ़ा तो ईरान अवश्य ही उनकी लड़ाई का एक क्षेत्र बन जायगा।

ईरान ने पिछले कुछ वर्षों में काफ़ी आर्थिक उन्नति की है। कुछ दिनों पहले तक ईरान प्रायः रेल-पथ विहीन देश था। पर अब फ़ारस की खाड़ी पर बसे बन्दर शाहपुर से लेकर डिज़फ़ुल और तेहरान हो कर कास्पियन सागर के किनारे बंदरशाह तक देश के आर पार एक रेल बन गयी है। तेहरान से तबरीज़ तक रेलवे लाइन बनाने की योजना भी तैयार हो गयी है। उधर रूस ने कास्पियन तट के बराबर ईरान की सरहद तक और फिर ईरान की सरहद के निकट पूर्व की ओर हिन्दुस्तान की सरहद तक रेल बना ली है। युद्ध के समय इन लाइनों का ख़ास महत्व होगा।

इराक़ की हालत ईरान से भिन्न है। महासमर के बाद ब्रिटेन ने इसे पूर्व के रास्ते के लिये महत्वपूर्ण तथा पेट्रोलियम के स्रोतों से भरा स्थान देख कर टर्कों से छीन लिया था। यहाँ के मोसुल के

इलाके में किरकुक के तेल के कुए काफ़ी महत्व रखते हैं। इसीलिये मोसूल के इलाके को फ्रांस ने अपने सीरिया के मैन्डेट में मिलाने की चेष्टा की थी। इस इलाके को मिलाने में वह सफल नहीं हुआ। पर उसके विरोध के परिणाम स्वरूप किरकुक के तेल की एक पाइप लाइन हदीथा से सीरिया के ट्रिपोली बन्दर तक ले आयी गयी। अंग्रेजों की पाइप लाइन किरकुक से फिलिस्तीन के हैफ़ा बन्दर तक आती है।

इराक़ को भली भाँति अपने दबाव में रखे रहना ब्रिटेन के लिये तेल के सिवा और एक कारण से आवश्यक हो गया। ब्रिटेन से भारत का सीधा हवाई रास्ता यहीं होकर आता है। इसलिये ब्रिटेन ने बग़दाद तथा इराक़ के और कई स्थानों पर अपने हवाई अड्डे बना रखे हैं। फ़ारस की खाड़ी में बहरीन द्वीप समूहों पर ब्रिटेन ने कब्ज़ा कर अच्छे हवाई अड्डे बना लिये हैं और इन द्वीपों में मिट्टी के तेल के चश्मे भी मिले हैं।

इन इलाकों से रूसी काउकाशिया के तेल के स्रोत भी बहुत अधिक दूर नहीं हैं। वहाँ पर बाकू, ग्रोज़नी और माइकोप में बहुत अधिक मात्रा में पेट्रोलियम निकलता है। इसीलिये रुस में बोल्शेविक क्रान्ति के बाद जब वहाँ गृहयुद्ध छिड़ा तो उस समय ब्रिटेन ने सबसे पहले इन्हीं तेल के इलाकों पर छापा मारकर उन पर अधिकार जमा लिया था।

पर यह अधिकार बहुत दिनों तक नहीं रहा। ब्रिटेन की आँखें उस तेल के इलाके पर अब भी होंगी। यदि सोवियत और ब्रिटेन में युद्ध छिड़ा तो इस बार भी ब्रिटेन का पहला धावा उसी तेल के इलाके की दिशा में होने की सम्भावना है।

लिथुआनिया
पूर्वी प्रशा
मिन्स्क
स्मोलेन्स्क
मास्को
पो
खारकोव
कीव
हंगेरी
रूमानिया
काला सागर
ओडेसा
क्रीमिया
जर्मनी के अधिकार में
रूस के अधिकार में
उक्रेनी आबादी
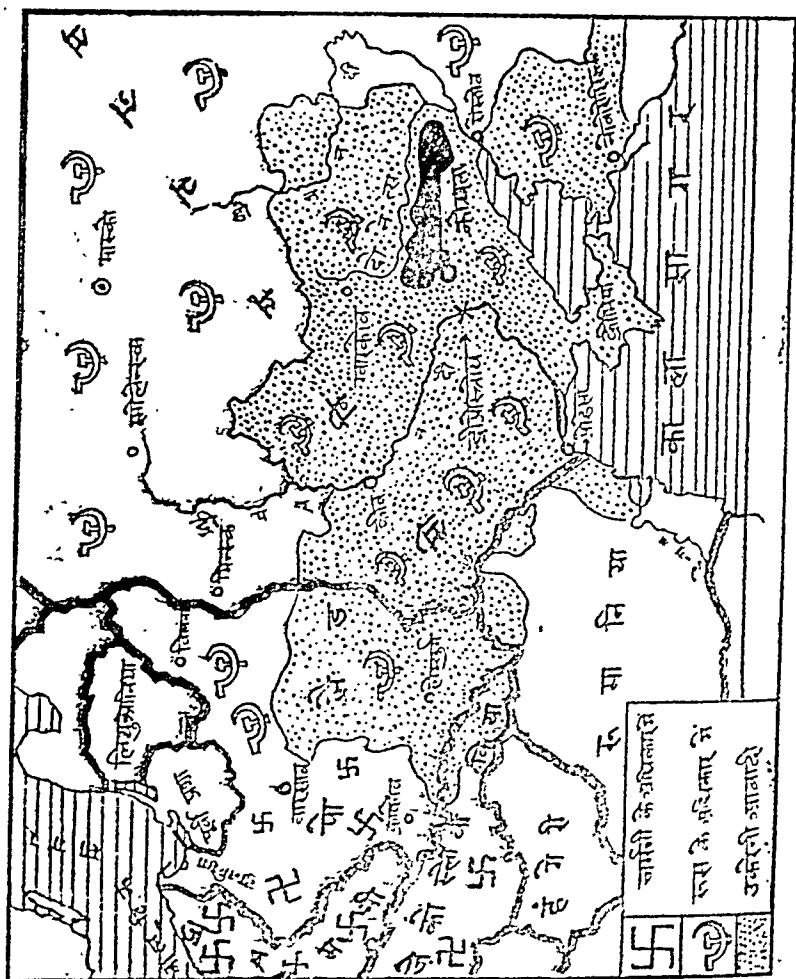
उक्रैन

उक्रैन के इलाके कई दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय महत्व रखते हैं। यूरोपीय रूस का दक्षिणी हिस्सा इन इलाकों से बना है। पुराने नक्शों में दिखाये गये पोलैंड और जेकोस्लोवाकिया के पूर्वी तथा रूमानिया के कुछ हिस्से भी उक्रैन के ही इलाक़े हैं।

उक्रैन के इलाकों का सबसे बड़ा हिस्सा रूसी सोवियत संघ का

एक प्रमुख सदस्य है। यदि उक्रैन का हिस्सा रूसी प्रजातंत्र से अलग कर लिया जाय तो उस संघ के बाकी हिस्सों का अधिक दिनों तक जीवित रह पाना असम्भव हो जाय। उक्रैन की ज़मीन काली मिट्टी की बहुत ही उपजाऊ ज़मीन है। समूचे रूस का भोजन अधिकतर यहीं के अन्न से चलता है। इसके सिवा यहाँ के दोनेत्स इलाके में काफ़ी मात्रा में कोयला और क्रिवोईरोग में लोहे की खाने हैं। कीव और ख़ारकोव के शहर भी शिल्प प्रधान हैं। अब सोवियत ने द्नीप्रोस्त्रोय में संसार का सबसे बड़ा हाइड्रोएलेक्ट्रिक प्लाण्ट (पानी से बिजली बनाने का केन्द्र) बनवाया है। काले सागर के तट पर इसके ओडेसा, रोस्तोव, नोवोरोसिस्क जैसे बन्दरगाह भी बड़े महत्व के हैं।

सोवियत रूस के लिये इन इलाकों के इतना अधिक महत्व रखने के ही कारण उसके शत्रु यूरोप की ओर से आक्रमण करते समय इस दिशा में अवश्य आगे आते हैं। १९१८-१९ के गृह युद्ध के समय इस इलाके पर शत्रुओं का दख़ल जम जाने के कारण सोवियत के बाकी हिस्सों के लिये जीवन-मरण का प्रश्न आ उपस्थित हुआ था।

हाल में कुछ वर्षों से नात्सी जरमनी की वक्रदृष्टि इस इलाके पर रहती चली आयी थी। हिटलर के एक विशेष प्लान के अनुसार इस क्षेत्र को जरमन प्रभुत्व क्षेत्र में आना चाहिये था। पर अब वह

स्तान सदा के लिये लुप्त हो गया है। सोवियत ने इन इलाकों में तथा इसकी यूरोप के अन्य देशों से मिलने वाली सीमाओं पर बहुत पक्की किलेबन्दी कर ली है। पिछले सितम्बर के महीने में इसकी पूर्वी सीमा बहुत दूर यूरोप की ही ओर आगे बढ़ गयी है।

१९१९ से उक्रैन का जो हिस्सा पोलैंड के अधिकार में था वह पोलैंड के द्वारा बहुत अधिक सताया जा रहा था। यहाँ पर बसने वाले उक्रैनियन लोगों की आबादी लगभग पचास लाख के थी। इन्हें कई बार वादा कर चुकने पर भी पोलैंड ने कभी कोई अधिकार नहीं दिये थे। इसके विपरीत पोलैंड की सरकार के जुल्म के खिलाफ़ आवाज़ उठाने वालों पर उक्रैनियन जनता को जेलों में बन्द कर तरह-तरह की सज़ायें दी जाती थीं। १९३८ में आस्ट्रिया के जरमनी में मिला लिये जाने के बाद जब पोलैंड नात्सी जरमनी के साथ मित्रता का रुख़ रखने लगा था, उस समय ख़ास तौर पर उक्रैनियन लोगों पर का अत्याचार इतना अधिक बढ़ गया था कि स्वयं प्रमुख पोलैंड निवासी इसका विरोध करने लगे थे।

पोलैंड के इन प्रदेशों में बसने वाले उक्रैनियन लोगों की संस्कृति रूसी उक्रैन वालों की जैसी है और उनका आर्थिक हित भी पोलैंड के दबाव से छूटकर रूसी उक्रैनवालों के साथ मिल जाने में ही था। यही कारण था कि पोलैंड में जब चन्द विशिष्ट लोगों का राज्य हिटलर के धक्के से खोखला होकर ख़त्म होने लगा तो रूस

पोलिश उक्रैनियन लोगों को जरमनी के हाथ में चले जाने से बचाने के लिये आगे आ गया और उक्रैनियन लोगों ने उसका दिल से स्वागत किया।

अब पोलिश उक्रैन का पूरा पूरा भाग सोवियत रूस के हाथ है। रूमानिया के उक्रैनियन अभी अलग हैं पर रूस के साथ मिलने के लिये उनके बीच भी आन्दोलन चल रहा है। टुकड़े टुकड़े हुए उक्रैन का फिर से इस प्रकार एक हो जाना उसके सांस्कृतिक तथा आर्थिक विकास के इतिहास में इस समय एक नये युग का आरम्भ करेगा।

उक्रैन निवासी बहुत अर्से से इस नये युग की ताक में थे। इसके लिये उन्होंने बहुत बार आन्दोलन भी किया था, पर सफल नहीं हुए थे। रूस में सोवियत सत्ता जम जाने के बाद रूसी उक्रैन में दो धारायें चलने लगी थीं। एक सोवियत के पक्ष में और दूसरी उसके विपरीत। सोवियत विरोधी शक्तियों को अपनी ओर मिलाने की चेष्टा जरमनी ने भी की थी। कुछ दिनों तक इसीलिये उक्रैन से सोवियत के अत्याचार की ख़बरें बहुत अधिक आया करती थीं और यह प्रचार किया जा रहा था कि कि उक्रैनवाले सोवियत सत्ता के सब से बड़े विरोधी हैं। पर अब समूचे उक्रैन के पूर्णतया सोवियत प्रभुत्व में आ जाने पर और जरमनी की ओर से सोवियत-विरोधी प्रचार बन्द हो जाने के कारण उक्रैन में राजसत्ता बदलनेवाले

किसी भी प्रकार के सोवियत विरोधी आन्दोलन की गुंजायश नहीं रह गयी।

यदि ब्रिटेन-फ्रांस ने फिर से पोलैंड का राज्य क़ायम करने की चेष्टा की तो उसमें सबसे पहला प्रश्न पोलिश उक्रैन् का आसकता है। पर १९१९ से लेकर १९३९ तक पोलैंड के उक्रेनिया ने जो कुछ सहा है और अब उसे सोवियत रूस के आश्रय में जो सुविधायें मिली हैं उनको देखते हुए यह ख़याल होता है कि उक्रैनियन आसानी से फिर पोलैंड के अधीन न किये जा सकेंगे।

काला सागर
सोवियत रूस
तुर्की
सीरिया
मिस्र
इराक
ईरान
कोवेत
सऊदी अरब
सूडान
यमन
हज़्रमौत
अरब सागर
अबीसीनिया

लाल सागर और अरब

ब्रिटेन-रूस अथवा ब्रिटेन-इटली की तनातनी के समय हमेशा इस बात की आशंका की जाती है कि लाल सागर और उसके चारों तरफ़ के अरब देश विशेषकर फ़िलिस्तीन और मिस्र युद्ध स्थल या युद्ध के अड्डों में परिणत हो जायँगे। इन मौक़ों पर बालकान के देश और तुर्की के रुख का भी युद्ध के नतीजे में बहुत बड़ा हाथ रहेगा। इसी लिये इस क्षेत्र में ब्रिटेन हमेशा अपनी क़िलेबन्दी मज़बूत बनाते जाने की चेष्टा करता है।

अरब देश महासमर के समय तुर्की के अधीन थे, उस समय तुर्की ब्रिटेन का विरोधी था। इसलिये ब्रिटेन ने अरब देशों को तुर्की के विरुद्ध बग़ावत कर देने के लिये प्रोत्साहित किया और साथ ही वादा किया कि महासमर के बाद अरब देशों की पूर्ण स्वतंत्रता वह स्वीकार करेगा। अरब देशों ने वैसा ही किया, और ब्रिटेन की महासमर के समय बहुत भारी मदद की। पर महासमर के बाद ब्रिटेन और फ्रांस ने अरब देशों को आपस में बाँट लिया।

इस मौके पर फिलिस्तीन का ज़िक्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योंकि उसके उदाहरण में ब्रिटेन की नीति बहुत ही स्पष्ट रूप में प्रकट हो जाती है। १९१५ में ब्रिटेन ने अरबों के साथ शर्त की थी कि युद्ध के बाद वहाँ स्वतंत्र अरब राष्ट्र क़ायम होगा। पर दो साल बाद प्रसिद्ध बालफ़ोर ऐलान के अनुसार यहूदियों को भी वादा कर दिया गया कि फिलिस्तीन में युद्ध के बाद स्वतंत्र यहूदी राष्ट्र (नैशनल होम) क़ायम होगा। यहूदियों से यह वादा कुछ विशेष कारण से किया गया था। ब्रिटेन को उस वक्त संसार भर के और विशेषकर अमेरिका के धनी यहूदियों को अपनी ओर मिला कर लड़ाई में मदद लेनी थी। दूसरा कारण मिस्र में स्वतंत्रता का आन्दोलन था। यदि मिस्र ब्रिटेन के दबाव से अलग हो जाने में समर्थ हो जाता तो उसके बदले फिलिस्तीन का अड्डा भारत के रास्ते तथा मोसूल के तेल की पाइप लाइन की रक्षा के उपयोग में आ सकता था।

युद्ध के बाद यहूदी धनी होने तथा ब्रिटेन की मदद पाने के कारण फ़िलिस्तीन में जमने लगे। वहाँ के अरब लोगों पर का दबाव बढ़ने लगा। इसका परिणाम हुआ कि वहाँ यहूदी और अरबों के बीच झगड़े चलने लगे। इसी झगड़े ने ब्रिटेन के खिलाफ़ विद्रोह का भी रूप धारण कर लिया। १९३७ में ब्रिटेन ने इसका निपटारा करने के लिये रायल कमीशन बिठाया। इस कमीशन ने फ़ैसला

किया कि फ़िलिस्तीन में ब्रिटिश मैंडेट जेरुसलम और 'पवित्र स्थानों' पर रहे और बाक़ी यहूदी और अरब लोगों के बीच बाँट दिया जाय। इस फैसले से यहूदी और अरब दोनों में एक भी संतुष्ट नहीं हुआ। अरबों का असंतोष अब भी रोश का रूप धारण किये हुए है। वे किसी भी हालत में फिलिस्तीन में यहूदियों का आगमन बर्दाश्त नहीं कर सकते क्योंकि वे समझते हैं कि यह उनके लिये आत्महत्या सरीखा सिद्ध होगा। इस समय हाइफ़ा (हैफ़ा) प्रथम श्रेणी का युद्ध का अड्डा बन रहा है। सम्भव है कभी स्वेज़ की नहर हाथ से चली जाय, इसलिए ब्रिटेन दक्षिणी फिलिस्तीन में भूमध्यसागर और अक़ाबा की खाड़ी को मिलाती हुई एक नहर बनाने का भी विचार कर रहा है।

अरब के दूसरे राष्ट्रों पर दृष्टि डालने पर हम यही पाते हैं कि वे ब्रिटेन के काबू में हैं अथवा उसके दबाव में हैं।

पिछले साल के आरम्भ में यमन की सरकार से इटालियन सरकार की आर्थिक व्यवस्था के सम्बन्ध में कुछ बातें चल रही थीं। इंगलैंड को तुरन्त सन्देह हुआ कि इटली यमन का कुछ इलाक़ा लेना चाहता है। अतः यमन की सीमा पर उसने फ़ौजी व्यवस्था करना आरम्भ कर दिया।

दो साल पहले तक हज़्रमौत में स्थानीय सुल्तान का राज्य था। पर यह स्थान अब ब्रिटेन के हाथ में है। अरब सागर के युद्ध

के लिये हज़्रमौत मार्के का स्थान है। इसका विस्तार ३३००० वर्ग-मील है।

भौगोलिक आधार पर यदि देखा जाये तो पता चलेगा कि अरब संस्कृति का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। इसका विस्तार जिब्राल्टर से लेकर फ़ारस की खाड़ी पर के शात-अल-अरब तक है। उत्तर में तुर्की की सीमा आलेप्पो-मोसल तक इसका विस्तार है। अफ्रिका के मोरक्को, अलजीरिया, ट्यूनिस, ट्रिपोली और मिस्र में अरब बसते हैं। एशिया में फ्रेंच मैंडेट के अधीन के लेबानोन और सीरिया अरबों के हैं। ब्रिटिश मैंडेट के फिलिस्तीन, इराक़, ट्रांस-जोरडानिया, सऊदी अरब, यमन, अदन, पेरीमद्वीप, ओमन, हज़्र-मौत बहरीन द्वीप समूह, कुवाइत तथा फ़ारस की खाड़ी तथा लाल सागर पर की और कई सल्तनतें अरब संस्कृति की हैं। इन इलाक़ों के पास के इलाके में बसने वालों को छोड़कर सिर्फ़ इन्हीं इलाक़ों के अरबों की आबादी ६ करोड़ के लगभग है। इसमें से लगभग एक करोड़ ७० लाख उत्तरी अफ्रिका के फ्रांस से अधीन देशों में रहते हैं। एक करोड़ नब्वे लाख मिश्र में, दस लाख लीबिया में, पन्द्रह लाख फ़िलिस्तीन और ट्रांसजोर्डानिया में, चालीस लाख इराक़ में चालीस लाख सीरिया और लीबानोन में और एक करोड़ तीस लाख अरब प्रायद्वीप में बसते हैं।

आज ये पूरे छः करोड़ अरब यूरोप के राष्ट्रों के पंजे में हैं और

उनके स्वार्थसाधन के सहारे हैं। इंगलैंड-फ्रांस के मौक़े के पूर्वी रास्ते पर बसना अरब लोगों के लिये बहुत अधिक दबाव का कारण बन गया है। इनके इलाकों में बहुत मार्के के समुद्री तथा हवाई अड्डे बना-कर तैयार किये गये हैं। पेट्रोलियम इनके ही इलाके में पाया जाता है। यहाँ से वर्तमान महासमर के लिये सेनाओं की भर्ती भी हो रही है। आश्चर्य नहीं कि वर्तमान युद्ध में निकट भविष्य में ही यह स्थान ख़ुद भयानक युद्धस्थल बन जाये।
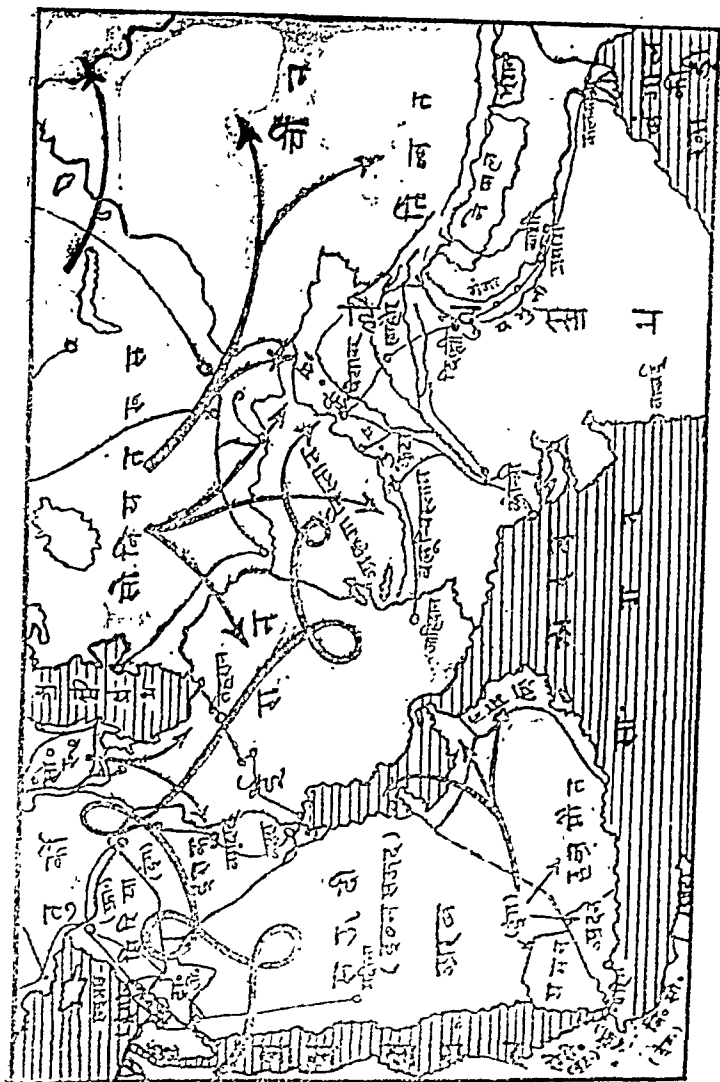
भारत के पश्चिमी पड़ोसी

ब्रिटेन भारत के ही बल महान राष्ट्र बना है। पिछली दो शताब्दियों में भारत के धन से वह कितने हद तक मालामाल हुआ है वह वर्तमान संसार के महान राष्ट्रों के बीच उसका उच्च स्थान ही स्पष्ट कर दिखला देता है। अभी हाल के जो आँकड़े प्राप्य हैं उनसे भी यही पता लगता है कि ब्रिटेन की पूँजी उसके सब उप-

निवेशों से अधिक भारत में ही लगी है। इस मामले में उसका भारत पर एकाधिकार है। उसकी सिर्फ़ भारत में ही लगभग ७७०००००००) (पौने आठ अरब रुपये) पूँजी लगी है जो पहले के भारत के ही व्यापार से प्राप्त की हुई है। इसी से ब्रिटेन को भारत से होने वाले अन्य लाभों के अलावा सिर्फ़ आर्थिक लाभ की थोड़ी बहुत कल्पना की जा सकती है।

इसी लाभ के कारण किसी भी हालत में ब्रिटेन भारत को दूसरे के हाथ में नहीं जाने देगा। कोई भी दूसरा विदेशी राष्ट्र भारत की सीमा के निकट न आने पावे इसका ख़याल उसने बहुत पहले से रखा है। इसी कारण उसकी और कई राष्ट्रों से पहले लड़ाइयाँ भी हो चुकी हैं। इन लड़ाइयों का ख़र्च भी उसे भारत से ही मिलता रहा है। सिर्फ़ यही नहीं, संसार के अन्य हिस्सों में अपना साम्राज्य विस्तार करने में भी ब्रिटेन भारत के धन और जन का उपयोग करता रहा है।

वर्तमान युद्ध के समय भी वह भारत से बहुत बड़ी मदद की आशा रखता है। यहाँ का सारा कच्चा माल, पूरा बाज़ार और बहुत बड़ी संख्या में आदमियों का उपयोग वर्तमान लड़ाई में कर सकता है। इसी लिये इस युद्ध में भारत उसके हाथ से चला न जाये इसकी व्यवस्था उसने सबसे पहले की है।

१९३८ के शरत में म्यूनिख़ के समझौते के बाद जब यूरोप

में शीघ्र युद्ध छिड़ने की सम्भावना दीखने लगी तो 'भारत की रक्षा' का प्लान तैयार करने के लिये लार्ड चैटफील्ड इंगलैंड से भारत भेजे गये। इन्हीं लार्ड चैटफील्ड को पिछले साल फरवरी में ब्रिटिश सरकार की केन्द्रीय सरकार में पूरी रक्षा के विभिन्न विभागों का संयोजक बनाया गया। भारत पर जिन राष्ट्रों के आक्रमण होने की सम्भावना की जा सकती थी उनसे भारत का सीधा सम्पर्क न रहे इसकी व्यवस्था के लिये चैटफील्ड की योजना के आधार पर मिलिटरी प्लान तैयार किया गया। जनवरी १९३९ में यह प्लान बना और १ सितम्बर को लड़ाई छिड़ने के दिन तक वह पूरा कर लिया जा चुका था।

लार्ड चैटफील्ड की एक राय यह भी थी कि ब्रिटिश और भारतीय सेनायें भारत से हटाकर इधर आने के ख़ास समुद्री रास्तों पर के मार्के के स्थानों को मज़बूत बनाने के लिये भेज दी जायें। और देश में अमन कायम रखने का भार कुशल शासन-प्रणाली पर ही छोड़ दिया जाय। पिछले साल गरमी के दिनों में यह काम पूरा किया गया। पिछले सितम्बर तक सारी ब्रिटिश सेना का एक तिहाई भाग भारत के बाहर भेजा जा चुका था। भारतीय देशी सेना का भी बहुत बड़ा भाग बाहर भेज दिया गया।

ये सेनायें ख़ासकर स्वेज़ की नहर के पास के इलाक़े तथा सिंगापूर को भेजी गई हैं। ये दो स्थान 'बाह्य आक्रमण से रक्षा के

६

अड्डे' विशेषरूप में माने जाते हैं। ख़ासकर इन सेनाओं के ख़र्च के लिये ही भारत की केन्द्रीय सरकार ने १९३९ के बजट से बचे हुए ९० लाख रुपये दिये हैं और १९४० के बजट में ७ करोड़ ३० लाख रुपये उस खर्च के लिये निकालने की योजना की है। इसे पूरा करने के लिये चीनी और पेट्रोल पर का कर विशेष रूप से बढ़ा दिया गया है।

जहाँ तक पश्चिम की ओर से भारत की ओर आने वाले रास्तों का ताल्लुक़ है वे इंगलैंड और तुर्की के बीच हाल में ही किये गये समझौते द्वारा और भी दृढ़ कर लिये गये हैं। अब भारतीय सेना भी अदन और लालसागर के अड्डों पर काफ़ी तादाद में भेजी जा चुकी है। ऐसी आशा की जाती है कि यदि इटली ने ब्रिटेन विरोधी शक्तियों का वर्तमान युद्ध में साथ देना शुरू किया तो भारत से भेजी गयी सेना तथा उसकी सामग्री इटालियन समुद्री तथा सैन्य शक्ति को पूर्वी अफ्रिका के मैदान तथा अड्डों पर सफलता-पूर्वक काबू में ले आ सकेगी।

भारत से जो सेनायें अदन, स्वेज, इराक़ आदि पश्चिम के रास्तों पर गयी हैं उनके भेजे जाने का एक और उद्देश्य हो सकता है। कुछ दिनों से अरब राष्ट्रों में संगठन का प्रयास चल रहा है। युद्ध के समय यह संगठित शक्ति किसी विपक्षी शक्ति के इशारे पर पश्चिम की ओर से भारत पर आक्रमण न

कर बैठे इसके लिये पहले ही से भारतीय सेना नाकों पर तैनात कर दी गयी है।

यदि उत्तर ध्रुव सागर और बालकान के मामलों में ब्रिटेन और सोवियत रूस के विरोध ने विषम रूप लिया और ब्रिटेन ने काउकाशिया के सोवियत तेल स्रोतों पर कब्जा करने की कोशिश की तो सोवियत रूस ईरान के रास्ते इराक़ और ईरान के तेल पर हमला करने की कोशिश करेगा और उसके अफ़ग़ानिस्तान के रास्ते भारत में प्रवेश कर आने की भी सम्भावना है।

रूस ने अभी हाल ही में ईरान और अफ़ग़ानिस्तान की सरहदों पर अपनी रेलवे लाइनें पूरी की हैं। हिन्दुस्तान की सरहद से बहुत नज़दीक स्तालिनाबाद के चारों तरफ़ भी बड़ी तेजी से सड़कें बन रही हैं।

काबुल
गजनी
जलालाबाद
अफ़रीदी
मातुन
टांक

भारत की पश्चिमोत्तर सीमा

यूरोप की राजनीति में जब से ब्रिटेन और रूस के बीच तना-तनी अधिक बढ़ गयी है तब से फ़ौजी विशेषज्ञों के बीच भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर रूस के आक्रमण की चर्चा चलने लगी है। बहुत से विशेषज्ञों का ख़याल है कि अफ़ग़ानिस्तान के रास्ते सोवियत रूस का बड़े पैमाने पर विद्युत-युद्ध आरंभ कर देना सम्भव है।

इस आक्रमण से अपने बचाव की तैयारी भारत की अंग्रेजी सरकार बहुत पहले से करती आ रही है। अफ़गान और पश्चिमोत्तर सीमा की विभिन्न जातियों के आक्रमण से बचने के लिये तो उसने अपनी अच्छी ख़ासी क़िलेबन्दी कर ली है। पश्चिमी सीमा की कई प्रमुख जातियों के विरुद्ध अंगरेजी सरकार की बहुत अर्से से लड़ाई चलती चली आई है। पिछले दो साल से भारत सरकार ने सीमा की जातियों के विरुद्ध आधुनिक से आधुनिक हथियार इस्तमाल किये हैं। सीमा की जातियाँ इनसे बिलकुल ही कुचली चाहे न डाली जा सकी हों पर अंगरेजी फ़ौज का इतना फ़ायदा अवश्य हुआ है कि वह सीमा पर के प्रत्येक इलाके से भलीभाँति वाकिफ़ हो गयी है और उसने विशेष तरह की फौजी दृष्टि से उपयोगी सड़कें तथा गढ़ तैयार कर लिये हैं।

पश्चिमोत्तर सीमा पर की क़िलेबन्दी का भारत की अंगरेजी सरकार को गर्व है। अंगरेजों के फ़ौजी विशेषज्ञ अब इस परिणाम पर पहुँच रहे हैं कि अपेक्षाकृत कम बम बरसाने वाले हवाई जहाज और मोटर युक्त फ़ौज के बल वे उत्तर की ओर से होने वाले हमले से अपनी रक्षा कर ले सकेंगे।

उत्तर की ओर से उस ढंग के हमले की आज बिलकुल ही आशंका न हो ऐसी बात नहीं है। यूरोप में लड़ाई छिड़ने के एक सप्ताह बाद ही अफ़ग़ानिस्तान में बग़ावत फैलाने के इरादे से चलते

हुए एक षड्यंत्र का पता लगा था। अवश्य ही यह षड्यंत्र बहुत जल्दी दब गया, पर इसके विषय में ख़याल किया जाता है कि यह षड्यंत्र 'किसी विदेशी शक्ति द्वारा प्रोत्साहित' किया गया था। वह विदेशी शक्ति कौन है इसका पता लगाना राजनीति के मामूली से मामूली विद्यार्थी के लिये भी कठिन नहीं है।

अफ़ग़ानिस्तान की सरकार के साथ भारत सरकार का मैत्री का सम्बन्ध है। पर अफ़ग़ानिस्तान की सैन्यशक्ति बहुत कम है। वह बढ़ती हुई रूसी हवाई और यान्त्रिक सेना को रोकने में असमर्थ रहेगी। इसलिये आज भारत पर रूस के आक्रमण की बात भले ही हो पर आज उसपर फ़ौजी विशेषज्ञ ग़ौर अवश्य ही करने लगे हैं। भारतीय इतिहास में पश्चिमोत्तर सीमा की ओर से हमले की बात कई शताब्दियों बाद आज फिर उठने लगी है। फ़ौजी विमानों की लम्बी उड़ान के कारण दर्रों के सुरक्षित रहने पर भी लोग भारत पर रूसी हमले को सम्भव करार दे रहे हैं।

सोवियत रूस
सिंक्यांग
ति ब्ब त
फारमोसा द्वी०
फिलिपाइन
द्वी० स०
स्याम
न्यूगिनी
जावा
आ स्ट्रे लि या
इंगलैंड के कब्जे में या पक्ष में
जापान

भारत के पूर्वी पड़ोसी

जब से युद्ध विद्या में हवाई शक्ति के समुद्री शक्ति से मिल-कर एक साथ आक्रमण करने की नीति विशेष महत्व रखने लगी है तब से फ़ौजी विशेषज्ञों का ध्यान भारत के पूर्वी रास्तों पर भी गया है। अंगरेज़ों ने इस रास्ते पर भी क़िलेबन्दी की है जिसमें सिंगापुर के समुद्री और हवाई अड्डे का ख़ास स्थान है।

पूर्व की ओर से अंगरेज़ों को ज्यादा ख़तरा जापान से है। जापान और प्रशांत महासागर की ओर से होने वाले हमलों से बचने के लिये मलाया प्रायद्वीप के दक्षिणी छोर पर सिंगापुर में अंगरेजों ने एक बहुत बड़ा समुद्री तथा हवाई अड्डा बनाया है। पिछले साल के १ सितंबर तक इस समुद्री अड्डे को इतना विस्तृत कर लिया गया था कि यहाँ पर लड़ाकू जहाजों का बड़ा दल आश्रय ले सकता है और उनमें से क्षत हुओं की मरम्मत की जा सकती है। इस समय इस अड्डे की रक्षा के लिये भारतीय तथा मलाया के सैनिक भेजे गये हैं।

मलाया प्रायद्वीप और स्याम के ठीक बीच के पिनांग बन्दरगाह में भी क़िलेबन्दी की गयी है। जून १९३९ के आखीर में प्रशांत महासागर और एशियायी क्षेत्र के अंगरेज तथा फ्रांसीसी जल-थल-सेना-नायक सिंगापुर में इकट्ठे हुए थे और युद्ध के समय एक साथ मिलकर अपनी रक्षा करने की व्यवस्था पर उन्होंने विचार किया था। इंगलैंड ने भी अपने जावा सुमात्रा के उपनिवेशों की रक्षा के लिये पिछले साल पाँच करोड़ डालर हथियारों में खर्च करने के लिये निकाला है। साथ ही उसने जापान से जावा जाने के सीधे समुद्री रास्ते पर के अम्बोयना टापू में भी बहुत पक्की क़िलेबन्दी की है।

अंगरेज़ फ़ौजी अफ़सर सिंगापूर के अड्डे को आस्ट्रेलिया तथा

न्यूज़ीलैंड की रक्षा के लिये भी उपयोगी मानते हैं, और साथ ही अपने उस गढ़ को अभेद्य भी क़रार देते हैं। इसी नीति के आधार पर सरकारी तरीक़े से क़िलेबंदी का भी काम चल रहा है। पर बहुत से फ़ौजी विशेषज्ञ सिंगापूर का वह महत्व स्वीकार नहीं करते। उनका कथन है कि सिंगापूर दूसरे सहायक ब्रिटिश अड्डों से बहुत दूर पड़ जाता है और इसलिये उतना अधिक उपयोगी नहीं साबित हो सकता।

दूसरी बात यह है कि यदि इंगलैंड यूरोपीय युद्ध में फँसा रहेगा तो उसके पास सिंगापूर के लिये लड़ाकू जहाज़ बचेंगे ही नहीं। जब तक जरमनी के बड़े-बड़े लड़ाकू जहाज़ डुबो नहीं दिये जाते तब तक अंगरेज़ों के लड़ाकू जहाजों का सिंगापुर बचाने के लिये आना कठिन होगा। अतः जब तक जरमनी की समुद्री शक्ति बिलकुल नष्ट न हो जाये सिंगापूर अभेद्य नहीं बनाया जा सकता। सिर्फ़ इतना ही नहीं सिंगापूर के अभेद्य न रहने से जापान आसानी से आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड पर भी आक्रमण कर दे सकता है। इन दोनों देशों में जापान की ताकत के सामने टिकने की शक्ति नहीं है।

जहाँ तक हाँगकाँग का सवाल है वह अंगरेजों के लिये सिर्फ़ बाहरी चौकी का काम देता है। जबतक सम्भव हुआ इंगलैंड उसकी रक्षा करेगा और फिर बाद में पीछे हटकर सिंगापूर चला आयेगा। यदि सिंगापूर कमज़ोर पड़ता है तो कलकत्ते के ऊपर आक्रमण होना

शीघ्र ही सम्भव हो जाता है। शायद इसीलिये अभी से ही हवाई हमलों से बचने के लिये कलकत्ते में आवश्यक प्रबन्ध और अभ्यास हो रहे हैं।

ब्रिटेन और जापान के बीच घमासान समुद्री लड़ाई चली तो जापान का लंका तक में छेड़छाड़ करना सम्भव है। इसी लिये हाल में लंका की राजधानी कोलम्बो में हवाई जहाजों को गिरानेवाली तोपें जमा कर रखी गई हैं। लंकावासियों को अब पहले-पहल सेना में भर्ती किया जा रहा है। भारतीय आन्दोलनों और उनकी प्रति-क्रियाओं से विलग रहने के कारण लंका द्वीप संकट के समय ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिये महत्व का ठिकाना सिद्ध हो सकता है। लंका की भौगोलिक स्थिति से अंग्रेज़ों को हवाई और समुद्री आमद-रफ़्त में बहुत मदद मिलती है। यह पूर्व और पश्चिम के बीच का एक प्रमुख स्टेशन है और यहाँ आस्ट्रेलिया, अफ्रिका और सिंगापूर चीन, जापान जाने आने वाले समुद्री जहाज तथा हवाई-जहाज टिका करते हैं और तेल कोयला लिया करते हैं।

चीन से सम्बन्ध रखते हुए प्रश्नों पर भी ब्रिटेन और जापान के बीच काफ़ी विरोध बढ़ता हुआ दिखाई देता है। जापान की अभी से ही पूरी कोशिश हो रही है कि बरमा-चीन वाली नई सड़क द्वारा मिलती हुई चीन की मदद ब्रिटेन बन्द कर दे। इस मामले में जापानी अधिकारी अब तक अंग्रेजों को काफ़ी दबा नहीं पाये

हैं। अभी हाल में एक ख़बर भी आयी थी कि जापान बरमा वालों को उभाड़ने की चेष्टा में है। इसमें सन्देह नहीं कि अभी जापान के बम बरसाने वाले हवाई जहाज़ों के अड्डे बरमा-चीन की सीमा से ६०० मील दूर हैं। पर यदि किसी कारणवश इस क्षेत्र में चीन को पीछे हटना पड़ा और ब्रिटेन-जापान तनातनी और बढ़ गयी तो बरमा के रास्ते भी भारत पर आक्रमण होने की सम्भावना की जा सकती है।

उस हालत में तिब्बत की ओर से भी भारत पर आक्रमण की आशंका कुछ लोग करते हैं, पर आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों में चाहे कितना भी विकास क्यों न हो गया हो फिर भी हिमालय पर विजय प्राप्त कर लेना आसान नहीं होगा। इसके अलावा अफ़गानिस्तान की ओर से अथवा चीनी तुर्किस्तान की ओर से रूसी हमले की भी सम्भावना है, पर ये हमले अभी बहुत कुछ यूरोप की भावी राजनीति पर ही निर्भर करते हैं।

चीन-जापान युद्ध

सुदूर पूर्व की सब समस्यायें चीन से सम्बन्ध रखती हैं। यह विशाल देश अब तक गहरी मिहनत करने वाले किसानों का देश रहता चला आया है। यदि यह यूरोप से इतनी अधिक दूरी पर नहीं होता तो शायद आज वह भी भारत की तरह अपनी आज़ादी खो चुका होता।

जहाज़ों के आविष्कार ने चीन को वाकी संसार के साथ सम्पर्क में ला दिया। उन्नीसवीं शताब्दी के द्वितीय अर्द्धांश तथा वर्तमान शताब्दी के प्रथम चरण में संसार की महान औपनिवेशिक शक्तियों ने चीन को चारों तरफ़ से दवाया, और उसका बहुत सा प्रदेश छीन लिया, तथा वहाँ अनेकों तरह की अद्भुत सुविधायें अपने लाभ के लिये प्राप्त कीं। यदि इन औपनिवेशिक शक्तियों में आपस में वैसा गहरा स्वार्थ-विरोध न होता तो चीन का बँटवारा कभी का हो गया होता।

आजकल पाँच वैसी शक्तियाँ हैं जिनका प्रत्यक्ष रूप से चीन की समस्याओं से सम्बन्ध है। दक्षिणी चीन के फाटक कैंटन के पास हांगकांग पर अंग्रेजों का अधिकार है। फ्रांस ने इंडोचीन दबा रखा है। अमेरिका का फिलीपाइन द्वीप समूह है, पर अमेरिका उन द्वीपों की अपेक्षा कहीं अधिक अपनी पूँजी के कारण यहाँ महत्व रखता है। रूस का ज़ार के ज़माने में मंचूरिया में प्रभुत्व क्षेत्र था, पर अब वह वहाँ से हट गया है और एक भिन्न रूप में चीन की राजनीति में भाग ले रहा है। पर इन चारों की अपेक्षा अधिक महत्व रखने वाला जापान है।

जापान का चीन में प्रवेश उत्तर से आरम्भ हुआ। सबसे पहले उसने क्वान्टुङ्ग के प्रायद्वीप में चीन से सन् १९९७ तक का पट्टा लिखवाया और दक्षिणी मंचूरिया रेल के क्षेत्र में सुविधायेंप्राप्त

की। इसके बाद १९३१-३३ के बीच उसने उत्तर-पूर्व के चारों प्रान्त चीन से अलग कर लिये, उन पर जापानी सेना ने आधिपत्य जमा लिया और उसे जापान के मंचूको नामक साम्राज्य में परिणत कर लिया गया। मंचूको के पश्चिम में जहाँ मंगोल जातियाँ बसती हैं वहाँ जापान ने सिगन मंगोलीय राज्य क़ायम किया और यही जापान के मंगोलिया की ओर आगे बढ़ने का आधार बन गया। १९३५ में इसी इरादे से जापान ने चीनी भीतरी मंगोलिया तथा चाहार के प्रान्तों का अधिकांश भाग तथा सुइयान प्रान्त की सीमा पर की भूमि पर कब्ज़ा कर लिया। इस प्रकार सारा भीतरी मंगोलिया जापान के प्रभुत्व क्षेत्र में आ गया।

भीतरी मंगोलिया के बाद जापान का ध्यान चीन के होपाई (हांपे) प्रदेश पर गया। पूर्वी होपाई (होपे) उसने चीन से अलग कर दिया और अब दक्षिण की ओर आगे आने लगा। जापान का चीन के दक्षिण और पश्चिम की ओर बढ़ने का क्रम अब भी जारी है और यही वर्तमान चीन-जापान युद्ध का स्वरूप ले रहा है।

चीन के ऊपर जापान का वर्तमान आक्रमण ७ जुलाई १९३७ से आरम्भ होता है। उस दिन पाइपिंग (पेकिंग) के नज़दीक जान बूझकर जापानियों ने चीन से झगड़ा खड़ा करने का एक बहाना ढूँढ़ लिया और अब वह जापानियों के शब्दों में 'चीन का वाक़्या' नाम से विख्यात है। अब यही वाक़्या चीन जापान दोनों के लिये

जीवन-मरण के प्रश्न में परिणत हो गया है। एशिया में इतनी बड़ी लड़ाई आज तक और कभी नहीं हुई, और अब इतना धन बरबाद होने और उतने लोगों की जान जाने पर भी यह लड़ाई ख़त्म होती नज़र नहीं आ रही है।

इस युद्ध में चीनी लोगों की शुरू से ही यह नीति रही है कि वे लड़ाई का क्षेत्र फैलाते जायें। इस फैलाव के द्वारा चीनी लोग जापान का ख़र्च बहुत अधिक बढ़ा देना और साथ ही गोरिला युद्ध (छापा मारकर छिपकर युद्ध करने की नीति) की पद्धति अपना कर जापानी सेनाओं का एक दूसरे से सम्बन्ध विच्छेद कर देना चाहते थे। फिर अन्त में विदेशी शक्तियों की मदद लेकर चीनी ज़ोरों का जवाबी हमला करते और जापानियों को अपने देश से निकाल देते।

इस नीति के आधार पर मोटे तौर पर वर्तमान चीन-जापान युद्ध के तीन काल रहे हैं। पहला आक्रमण आरम्भ होने से लेकर जापानियों के हांगकाङ पर कब्ज़ा हो जाने तक का काल था। लड़ाई के क्षेत्र का फैलाव करते जाने के इरादे से चीनी इस काल में जापानियों का सामना करते पर सतत अपनी शक्ति पीछे फेंक हथियार समेत पीछे हटते रहे हैं। इस अर्से में जापान ने चीन के समुद्र तट पर के सब प्रदेशों पर दख़ल कर लिया। चीनी फौजें पश्चिम की ओर और विकट पहाड़ी इलाक़ों की ओर चली गयीं। चीनी सरकार ने अपनी नई राजधानी चुंगकिंग में स्थापित की।

यहीं से ही लड़ाई का दूसरा काल आरम्भ होता है। इस काल की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि लड़ाई का कोई निश्चित मोर्चा नहीं रहा है। जापान का भीतरी प्रान्तों में प्रवेश हो गया है पर उन प्रान्तों पर उसका कब्ज़ा नहीं हो पाया है। यातायात के साधनों के पास ही विशेष कर जापान का अधिकार रहा है पर उससे कुछ ही दूर पर के प्रदेश में अब तक उसके पाँव नहीं जम पाये। इस समय चीन की नीति जापानी लाइनों पर छिप-छिपकर छापा मारने और उन्हें तोड़ते रहने की रही है जिसमें अधिक संख्या में जापानी सेना इधर ही फँसी रहे और देश के विजित भाग में किसी प्रकार की भी व्यवस्था क़ायम न हो सके। व्यवस्था के बिना जापानी व्यापार भी नहीं चल सकता और न उसकी लड़ाई द्वारा हुई क्षति की पूर्ति ही हो सकती है।

चीनी सेना के पास लड़ाई के वर्तमान साधन मौजूद नहीं हैं। बहुत अल्प संख्या में भी वह इन्हें बड़ी कठिनाई से जुटा पा रही है। समुद्र से सम्बन्ध विच्छेद हो जाने के बाद इस समय उसके तीन सड़कों के रास्ते बाहरी देशों से सम्बन्ध जोड़े हुए हैं। इन में एक लगभग २००० मील लंबी सड़क चुंगकिंग से कांसू होती हुई सोवियत रूस की तुर्की-साइबेरिया रेलवे तक गई है। यह लगभग सारा ही रास्ता बहुत बीहड़ है। रास्ते में कहीं मोटर का तेल भी नहीं मिलता इसलिये मोटर से ढुलाई की दिक्कतों का सामना से

अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। दूसरी सड़क फ्रेंच इंडोचीन के हाइफौंग बन्दर तक जाती है। यह कुछ कम लंबी है और इस पर आधी दूर तक रेल भी है। पर जापानियों ने फ्रेंच लोगों पर दबाव डाल कर इधर से चीन को युद्ध की सामग्री का भेजा जाना बन्द कर दिया है। तीसरी सड़क रंगून तक आने वाली लगभग २१०० मील लम्बी है। पर इसकी एक तिहाई में रेल है। आजकल चीन को युद्ध की सामग्री इसी तीसरे रास्ते से पहुँच रही है। मगर दूरी और इस रास्ते के बीहड़पन का अन्दाज़ लगाकर ही चीन तक पहुँचने वाली युद्ध सामग्री का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। चीन के पास उतना अधिक धन भी नहीं है कि वह युद्ध सामग्री की कीमत विदेशी शक्तियों को नक़द दे सके। इसलिये चीन अपनी सारी शक्ति गोरिला युद्ध नीति पर लगा रहा है। यही लड़ाई के दूसरे काल की विशेषतायें रही हैं।

छिप कर छापा मारने की कला में चीन की लाल सेना अब भी सब से दक्ष है। जापानियों के भीतरी चीन में प्रवेश कर जाने से रोक रखने में सब से बड़ा हाथ इसी सेना का है। इस सेना का संगठन सोवियत रूस की लाल सेना के निरीक्षण में हुआ था। अब तक इसकी शक्ति अधिक नहीं बढ़ सकी थी इसका कारण यह है कि चिआंगकाई-शेक ने जापानियों के दबाव में आकर इस सेना को बहुत तबाह किया था। पर अब जब से जापान ने चीन पर खुला हमला किया है तब से यही सेना चीन के त्राण के लिये सब से आगे रह

रही है। निकट भविष्य में इसे रूस से अधिक सैनिक-सामग्री मिलने की आशा है। अगर इस समय चीन की रक्षा में इसी सेना का प्रमुख हाथ रहा तो चीन की विजय होने पर भी इस सेना का वहाँ की समाज-व्यवस्था में वैसा ही प्रमुख हाथ रहेगा।

अब यूरोप में युद्ध छिड़ जाने के बाद चीन-जापान युद्ध का तीसरा काल आरम्भ हुआ है। यह ख़याल कि यूरोप की लड़ाई से जापान को पूर्व में पूरी आज़ादी मिल जायगी सही नहीं निकला। जापान स्वयं चीन के युद्ध में उतना उलझा हुआ है कि वह वहाँ से निकलने की चेष्टा भी करे तो इस समय उसके लिये सम्भव नहीं है। और न इस समय उसकी माली हालत ही ऐसी अच्छी है कि वह ख़ूब ख़र्च करके चीन में अपना पाँव जमा सके।

इसी मौके पर विदेशी शक्तियाँ भी चीन में जापानी प्रसार को रोकने लगी हैं। चीनी लोगों का बहुत पहले से ही ख़याल था कि अमेरिका के पीठ पर, सोवियत रूस के दायें, और ब्रिटेन के बायें रहते जापान सारे चीन पर कब्ज़ा नहीं कर सकेगा। वास्तव में अमेरिका ने १९११ में जापान के साथ जो विशेष प्रकार की सन्धि की थी उसे पिछले साल जुलाई के आख़ीर में ख़त्म कर दिया। इस सन्धि का बहुत बड़ा राजनैतिक महत्व था। चीन के आक्रमण से जापान को हटाने के लिये ही यह सन्धि ख़त्म की गयी है। इस सन्धि के टूटने के बाद अमेरिका चीन को मदद पहुँचाने योग्य बन

गया है। उसके आयात-निर्यात के बैंक ने हाल में चीन को ढाई करोड़ डालर का ऋण भी दिया है। इसका मतलब होता है कि चीन की हार के कारण यदि अमेरिका अपना यह रुपया डूबता और अपनी वहाँ की अन्य सुविधायें नष्ट होता देख कर जापान के विरुद्ध वास्तविक युद्ध भी छेड़ दे तो कोई आश्चर्य नहीं होगा।

इसमें सन्देह नहीं कि चीन में जापान की पूरी विजय हुई तो विदेशी शक्तियों को वहाँ से मिलने वाला लाभ चला जायगा। इसी लिये विदेशी शक्तियाँ आज अर्थ द्वारा चीन की मदद कर रही हैं। इसी लिये ब्रिटेन ने भी चीनी सिक्के को गिरने से बचाने में मदद की है। पर ये विदेशी शक्तियाँ अब भी इसी बात की आशा कर रही हैं कि युद्ध का इतना बड़ा ख़र्च जापान और अधिक दिनों तक बर्दाश्त नहीं कर सकेगा, वह आर्थिक दृष्टि से चौपट हो जायगा, उसी के परिणाम स्वरूप लम्बे अर्से से चीन में लड़ते लड़ते जापानी सैनिक ऊबकर घर लौटने के लिये उत्सुक हो उठेंगे और विद्रोह कर बैठेंगे और आख़िर जापान के सारे चीन पर आधिपत्य जमाने की बात दूर का एक स्वप्न रह जायगी।

चीन को अपनी विजय के लिये बहुत ज़बर्दस्त जवाबी हमला करना पड़ेगा। इसकी वह तैयारी कर रहा है पर उसे अधिक सफलता नहीं मिली है। किसी बड़े राष्ट्र ने यदि उसकी ज़ोरों से मदद की

तो उसका यह काम आसान हो जायगा। पर यह मदद भी अभी यूरोप की भावी राजनीति पर निर्भर करती है।

वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए यही मालूम पड़ता है कि निकट भविष्य में चीन या जापान किसी के भी जल्दी विजयी होने की उम्मीद नहीं है। जिस ढंग की लड़ाई चल रही है वह अभी और बहुत दिन चल सकती है। पर यह अवधि सोवियत रूस और जापान के बीच भावी सम्बन्ध पर भी बहुत दूर तक निर्भर करती है।
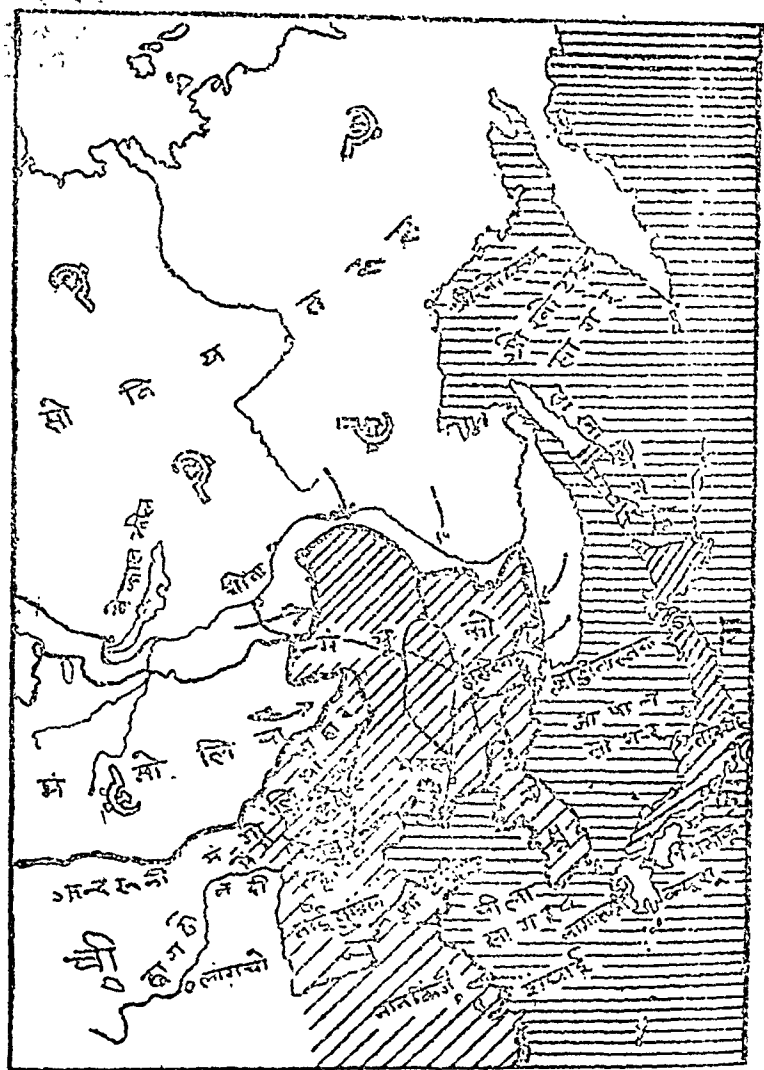
रूस-जापान संघर्ष

रूस और जापान ही सुदूर पूर्व की दो प्रधान महान-शक्तियाँ हैं। इस शताब्दी के आरम्भ में इन दो शक्तियों में साम्राज्य प्रसार के आधार पर द्वेष आरम्भ हुआ। एशिया के राष्ट्रों में जापान ही ऐसा था जिसने यूरोपीय ढङ्ग पर विकास का रास्ता अपनाया था। आधुनिक युद्ध की कला भी उसने यूरोप के राष्ट्रों से बहुत अच्छी तरह सीख ली थी। इसी लिये उसकी चीन के क्षेत्र में आर्थिक

हितों के लिये जब १९०४-५ में उसका रूस से संग्राम छिड़ा तो उसमें वह विजयी हुआ।

रूस-जापान युद्ध के बाद से ही जापान की गिनती महान-शक्तियों में होने लगी। उसके साम्राज्य विस्तार आरम्भ होने का भी यही काल है। रूस पर विजय प्राप्त करने के बाद उसे पोर्टआर्थर और साखालिन प्रायद्वीप के दक्षिण का अर्द्धांश मिला। १९१० में उसने कोरिया भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। दक्षिणी मंचूरिया में भी इसी समय से वह अपनी शक्ति दृढ़ करने लगा। पर इस क्षेत्र में उसकी रूस से पुनः प्रतिद्वन्द्विता चलने लगी। इस प्रतिद्वन्द्विता ने उस क्षेत्र की रेलवे लाइन का मामला लेकर तनातनी का रूप धारण कर लिया।

रूस की पूर्व-चीनी रेलवे के क्षेत्र में सोवियत की जापान के साथ बहुत दिनों तक बिना ऐलान की लड़ाई चलती रही। यूरोपीय मामलों की प्रधानता सोवियत के लिये बढ़ जाने के कारण उसने अभी कुछ साल पहले यह रेलवे लाइन जापान के हाथ बेच दी।

रेलवे लाइन का झगड़ा समाप्त हो जाने पर भी दोनों शक्तियों में कुछ और कारणों से तनातनी बनी ही रह गयी। सोवियत जिस समय अपनी सीमा पर के प्रत्येक राष्ट्र के साथ एक दूसरे पर हमला न करने के मक़सद की सन्धियाँ कर रहा था, उस समय जापान ने उस प्रकार की सन्धि सोवियत के साथ करने से इनकार कर दिया।

सिद्धान्त के मामले में भी दोनों राष्ट्र एक दूसरे के कट्टर विरोधी रहे हैं। सोवियत साम्यवादी विचार का था तो जापान उत्तरोत्तर फ़ासिस्ट बनता गया। भविष्य के युद्ध में सोवियत को निर्बल बना देने के ख़याल से ही जापान ने जरमनी और इटली के साथ 'सोवियत-विरोधी' (एँटी-कोमिन्टर्न) सन्धि कर ली। ये राष्ट्र यूरोप और एशिया दोनों ही ओर से एक साथ सोवियत रूस पर हमला करने की बातें भी करने लग गये थे। पर अब यूरोप की दलबन्दियों के पलटा खा जाने के कारण उस सोवियत-विरोधी सन्धि का कोई महत्व नहीं रह गया।

उत्तरी चीन में दोनों शक्तियों ने अपनी सीमाओं पर बड़ी पुख़्ता क़िलेबन्दी की है। ये क़िलेबन्दियाँ आधुनिक ढंग की हैं और दोनों पक्ष की सेनायें नवीन अस्त्र-शस्त्रों से लैस हैं। दोनों ने युद्ध-सामग्री के निर्माण का समुचित प्रबन्ध किया है, पर जापान के आर्थिक साधन सोवियत की तुलना में बहुत सीमित हैं। बड़ी तादाद में अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण की समस्या पर विचार करते ही रूस के मुक़ाबिले में जापान की निर्बलता स्पष्ट हो जाती है। मंचूको के लोहा, कोयला और रुई पर अपना अधिकार हो जाने पर भी जापान के साधन अपर्याप्त हैं। अब तक उस प्रांत पर क़ब्ज़ा जमाने में उसने जितना ख़र्च किया है वह वहाँ की आमदनी से पूरा नहीं हो पाया है।

पर इसी दुर्बलता के कारण वह सोवियत से टक्कर लेने में

पीछे रहता हो वैसी बात नहीं है। मंचूको से मिलनेवाली सोवियत सीमाओं पर रूस और जापान के बीच १९३२ से ही बिना ऐलान लड़ाई चलने लगी थी। १५ सितम्बर १९३९ को इन दोनो के बीच एक ख़ास तरह का समझौता हुआ है जिसके अनुसार अभी दोनो ने शस्त्र रख दिये हैं। पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि कई साल तक यह इलाका घमासान लड़ाइयोंका क्षेत्र बना रहा है और अधिक संभावना इसी बात की है कि आख़िरी निश्चित निर्णय होने के पहले और एक बार बनेगा। चंगेज़ख़ाँ के ज़माने के बाद यह पहला ही मौका है जब ये इलाके सारे संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं।

पेकिंग के आस पास के उत्तरी चीन के अपने प्रभुत्व में आये इलाकों और कम्यूनिस्ट रूस के बीच जापान ने अपने प्रभुत्वक्षेत्र के ही भीतर एक मध्यवर्त्ती राज्य (बफ़र स्टेट) क़ायम किया है। इस क्षेत्र से जापान को काफ़ी मात्रा में कोयला और लोहा प्राप्त हो सकता है। इसी का उपयोग कर वह सोवियत पर आक्रमण करना चाहता है। पर पर्याप्त पूँजी न रहने के कारण वह इस काम में सफल नहीं हो पाया है। बाहरी मंगोलिया और चीनी तुर्किस्तान की तरह मंचूरिया और उत्तरी चीन को रूसी बोलशेविक रंग में रंग जाने से बचाने के बहाने जापान सोवियत प्रभुत्वक्षेत्र के मंगोलिया पर भी हमला करने लगा था। बाहरी मंगोलिया में रेल, सड़क हवाई

अड्डे आदि बनाकर सोवियत ने उसे मज़बूत बना लिया है। इसके ख़िलाफ़ लड़ने के लिये जापान को भीतरी मंगोलिया में लड़ाई का बहुत सामान भेजना पड़ा है। वहाँ जापान ने अपने निरीक्षण में मेंगचिआंग नाम का राज्य कायम किया है और वहाँ की गद्दी पर अपने हाथ के कठपुतले प्रिंस तेह को बिठाया है।

मेंगचिआंग और मंचूको की आड़ में जापान सोवियत मंगोलिया पर हमला करने की चेष्टा करता रहा है। पिछले साल जुलाई में तो उन लड़ाइयों ने बड़ा ही भयानक रूप धारण कर लिया था और प्रतिपल सोवियत रूस और जापान के बीच खुल कर लड़ाई ठन जाने की संभावना होने लगी थी।

सोवियत रूस को यह स्पष्ट हो गया था कि भीतरी मंगोलिया और उत्तरी चीन को आधार बनाकर जापान बैकाल झील की ओर बढ़कर सोवियत सुदूर पूर्व के इलाकों का उसके बाकी हिस्सों से सम्बन्ध विच्छेद कर देना चाहता है। इतना गहरा [illegible] रहने के बावजूद भी सोवियत सेनाओं ने जापानी सेना का इस दिशा में आगे बढ़ना सफलता से रोका है।

अपनी साम्राज्य रक्षा की नीयत से भीतरी मंगोलिया [illegible] की बाहरी सोवियत मंगोलिया पर आक्रमण करने के लिये [illegible]

रहित करते समय जापान ने उनको 'धर्मरक्षा' का भी पाठ पढ़ाया है। तिब्बत के जैसे लामाओं की इस देश में प्रधानता रहने के कारण जापान की इस नीति का काफ़ी प्रभाव पड़ा है और अब वे 'धार्मिक कट्टरता' सामने रखकर भी लड़ा करते हैं। इसके प्रतिकार में सोवियत ने भी बाहरी मंगोलिया की सीमा पर एक साल पहले पुख्ता मोर्चेबंदी की है।

भीतरी और बाहरी मंगोलिया के बीच की लड़ाई जापान और सोवियत के बीच की लड़ाई का पूर्व-प्रयोग रहा है। पिछले सितम्बर के महीने में यूरोप की राजनीति के भारी पलटा खा जाने से इस क्षेत्र की भी राजनीति बदल गयी है। जापान और सोवियत रूस इन दिनों पिछले साल की भाँति एक दूसरे पर छुरा ताने खड़े नहीं दीख रहे हैं। इसका ख़ास कारण यही मालूम होता है कि मंगोलिया की समस्याओं से अधिक महत्व रखने वाली शायद संसार की काया पलट करने वाली समस्यायें इन दोनों देशों के सामने हैं। इसी कारण उत्तरी चीन की सीमा पर की लड़ाई बन्द करने के लिये दोनों को बाध्य होना पड़ा है।

वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए यही अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि भविष्य में यदि सुदूरपूर्व के प्रभुत्व क्षेत्र के लिये सोवियत रूस और जापान के बीच फिर से जमकर संघर्ष चला तो

हांगी बन्दर और आसपास का इलाका रूस को पट्टे पर दिया गया, उत्तर में पेत्सामो का बन्दर रूस ने जाबिते में तो फिनलैंड को लौटा दिया पर वहां जहाज़रानी की निरंकुश सुविधायें सोवियत ने अपने हाथ में रखी हैं और फिनलैंड को वहां जंगी जहाज़ रखने की इजाज़त नहीं दी है। अतः पेत्सामो अब भी मुरमान्स्क बन्दर की मुट्ठी में रहेगा। फिनलैंड को इस प्रकार दबा कर तथा अपने अगले पड़ोसी स्वेडेन से सहयोग की उम्मीद रख कर सोवियत अब पश्चिम में पहले से अधिक सुरक्षित हो गया है और इस का पूर्व में सोवियत की परराष्ट्रनीति पर तुरन्त असर होने की सम्भावना है।

पूर्वी यूरोप की भाँति सुदूर पूर्व में भी शक्ति का पलड़ा सोवियत रूस के हाथ में आता जा रहा है। रूस का एकमात्र पूर्वी प्रतिद्वंद्वी जापान कई तरफ से दिवालिया हो रहा है। रूस की इस बढ़ती शक्ति का संसार के ऊपर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ सकता है। इससे राज्य-व्यवस्था और समाज-व्यवस्था में आमूल परिवर्तनों के होने की सम्भावना है। इन क्रान्तिकारी परिवर्तनों की कल्पना से संसार भर के लोग आशा और भय से आन्दोलित हो रहे हैं।